યુગાંત

In this PDF, inside cover and title page are missing.

अनुक्रमणिका

			पृष्ठ
१. सत्य समग्र दृष्टि में	:	बोध कथा	१–२
२. संन्यास मेरी दृष्टि में	:	संकलन : स्वामी कृष्ण कबीर बम्बई	३–६
३. पत्रों के अमृत आलोक से	:		७–११
४. नव-संन्यास अंतर्राष्ट्रीय : एक अंतर्दृष्टि	:	संकलन स्वामी योग चिन्मय	१२–२०
५. साधकों के पत्र : भगवान श्री को			२१–२६
६. नव-संन्यास : एक अनुभव	:	स्वामी आनंदघन, अहमदाबाद	२७.
७. कर्म मार्ग का भ्रम (प्रवचन)	:	संकलन मां योग समाधि, राजकोट	२८–४६
८. जब जगज्जननी अमृत स्नात हुई	:	श्री ब्रह्मदत्त	४८–५२
९. आबू शिविर या प्रभु लीला	:	श्री आनन्द विजय, जबलपुर	५४–६१

गीत : काव्य

१. आचार्य रजनीश : एक यथार्थ	:	स्वामी अगेह भारती	४७
२. प्रेम	:	राजेन्द्र 'आकुल'	५३

मूल्य : १)०० रु. एक प्रति

वार्षिक मूल्य : १२)०० रु.

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक– अरविंद कुमार के लिए, श्रीपाल प्रिंटर्स, १९१, कोतवाली वार्ड, जबलपुर द्वारा मुद्रित

गोविंद जय--जय, गोपाल जय--जय ।
राधेरमण हरि – गोविंद जय -- जय ।।

(भगवान श्री प्रेमी भक्तों के बीच— अहमदाबाद गीता ज्ञान सत्र में)

इस अंक के छायाकार : अरुणकुमार मिश्र, अहमदाबाद

सत्य समग्र दृष्टि में

जिसे प्रभु को पाना है उसे प्रतिक्षण उठते बैठते भी स्मरण रखना चाहिये कि वह जो कर रहा है, वह कहीं प्रभु को पाने के मार्ग में बाधा तो नहीं बन जायेगा ?

० ० ०

एक कहानी है। किसी सर्कस में एक बूढ़ा कलाकार है जो लकड़ी के तख्ते के सामने अपनी पत्नी को खड़ाकर उस पर छुरे फेंकता है। हर बार छुरा पत्नी के कंठ, कंधे, बाँह या पांवों को बिलकुल छूता हुआ लकड़ी में धंस जाता है। आध इंच इधर-उधर कि उसके प्राण गये। इस खेल को दिखाते उसे तीस साल हो गये हैं। वह अपनी पत्नी से बहुत ऊब गया है और उसके दुष्ट और झगड़ालू स्वभाव के कारण उसके प्रति क्रमशः उसके मन में बहुत घृणा इकट्ठी हो गई है। एक दिन उसके व्यवहार से उसका मन इतना विषाक्त है कि वह उसकी हत्या के लिए निशाना लगाकर छुरा मारता है। उसने निशाना साध लिया है---ठीक हृदय और एक ही बार में सब समाप्त हो जायगा--फिर वह पूरी ताकत से छुरा फेंकता है। क्रोध और आवेश में उसकी आंखें बन्द हो जाती हैं। वह बन्द आंखों में ही देखता है कि छुरा छाती में छिद गया है और खून के फव्वारे फूट पड़े हैं। उसकी पत्नी एक आह भरकर गिर पड़ी है। वह डरते-डरते आंखें खोलता है पर पाता है कि पत्नी तो अछूती खड़ी मुस्करा रही है। छुरा सदा की भांति बदन को छूता हुआ निकल गया है। वह शेष छुरे भी ऐसे ही फेंकता है---क्रोध में, प्रतिशोध में, हत्या के लिए---लेकिन हर बार छुरे सदा की भांति ही तख्ते में छिद जाते हैं। वह अपने हाथों की ओर देखता है,---असफलता में उसकी आँखों में आँसू आ जाते हैं और वह सोचता है कि इन हाथों को क्या हो गया है ? उसे पता नहीं है कि वे इतने अभ्यस्त हो गये हैं कि अपनी ही कला के सामने पराजित हैं !

हम भी ऐसे ही अभ्यस्त हो जाते हैं---असद् के लिए, अशुभ के लिए और तब चाहकर भी शुभ और सुन्दर का जन्म मुश्किल हो जाता है। अपने

ही हाथों से हम स्वयं को रोज जकड़ते जाते हैं और जितनी हमारी जकड़न होती है उतना ही सत्य दूर हो जाता है।

०

हमारा प्रत्येक भाव, विचार और कर्म हमें निर्मित करता है। उन सबका समग्र जोड़ ही हमारा होना है। इसलिये जिसे सत्य के शिखर छूना है, उसे ध्यान देना होगा कि वह अपने साथ ऐसे पत्थर तो नहीं बांध रहा है जो कि जीवन को ऊपर नहीं, नीचे ले जाते हैं।

० सत्य दो बिन्दु ०

सत्यानुभूति न तो विचार है, नहीं भावना। वह तो समस्त प्राणों का तुम्हारी समस्त सत्ता का आन्दोलित और स्पंदित हो उठना है। वह तुममें नहीं होती, वरन् तुम ही उसमें होते हो। वह तो तुम्हारा स्वरूप है। वह अनुभव ही नहीं, स्वयं तुम ही हो। और मात्र तुम ही नहीं हो, तुमसे भी ज्यादा वह है क्योंकि उसमें सर्व की सत्ता भी समाहित है।

सत्य आकाश की भांति है---अनादि और अनंत और असीम। क्या आकाश में प्रवेश का कोई द्वार है? तब सत्य में भी कैसे हो सकता है? पर यदि हमारी आंखें ही बन्द हों तो आकाश नहीं है और ऐसा ही सत्य के सम्बन्ध में भी है। आंखों का खुला होना ही द्वार है। और आंखों का बन्द होना ही द्वार का बन्द होना है।

—००—

संन्यास मेरी दृष्टि में

संकलन—

स्वामी कृष्ण कबीर, बम्बई.

दिनांक ३ जुलाई, १९७१ को रात्रि ७.४५ बजे आकाशवाणी, बम्बई से "मनोभूमि" नामक साप्ताहिक ललित कार्यक्रम के अंतर्गत प्रसारित हुई भगवान श्री रजनीश की एक वार्त्ता।)

मनुष्य है एक बीज—अनन्त सम्भावनाओं से भरा हुआ। बहुत फूल खिल सकते हैं मनुष्य में, अलग-अलग प्रकार के। बुद्धि विकसित हो मनुष्य की तो विज्ञान का फूल खिल सकता है और हृदय विकसित हो तो काव्य का और पूरा मनुष्य ही विकसित हो जाय तो संन्यास का।

संन्यास है, समग्र मनुष्य का विकास। और पूरब की प्रतिभा ने पूरी मनुष्यता को सबसे बड़ा दान दिया—वह संन्यास है।

संन्यास का अर्थ है, जीवन को एक काम की भांति नहीं वरन एक खेल की भांति जीना। जीवन नाटक से ज्यादा न रह जाये, बन जाये एक अभिनय। जीवन में कुछ भी इतना महत्वपूर्ण न रह जाए कि चिन्ता को जन्म दे सके। दुःख हो या सुख, पीड़ा हो, संताप हो, जन्म हो या मृत्यु, **संन्यास का अर्थ है इतनी समता में जीना--हर स्थिति में--कि भीतर कोई चोट न पहुंचे।** अन्तरतम में कोई झंकार भी पैदा न हो। अंतरतम ऐसा अछूता रह जाय—जीवन की सारी यात्रा में, जैसे कमल के पत्ते पानी में रहकर भी पानी से अछूते रह जाते हैं। **ऐसे अस्पर्शित, ऐसे असंग, ऐसे जीवन से गुजरते हुए भी जीवन से बाहर रहने की कला का नाम संन्यास है।**

यह कला विकृत भी हुई। जो भी इस जगत में विकसित होता है, उसकी संभावना विकृत होने की भी होती है। **संन्यास विकृत हुआ, संसार के विरुद्ध खड़े हो जाने के कारण**— संसार की निन्दा, संसार की शत्रुता के कारण। संन्यास खिल सकता है वापस—फिर मनुष्य के लिए आनन्द का मार्ग बन सकता है, संसार के साथ संयुक्त होकर, संसार को स्वीकृत करके। संसार का विरोध करने वाला, संसार की निन्दा और संसार को

शत्रुता के भाव से देखने वाला संन्यास अब आगे संभव नहीं होगा । अब उसका कोई भविष्य नहीं है । है भी रुग्ण वैसी दृष्टि ।

यदि परमात्मा है तो **यह संसार उसकी ही अभिव्यक्ति है ।** इसे छोड़कर, इसे त्यागकर परमात्मा को पाने की बात ही न समझी है । इस संसार में रहकर ही इस संसार से अछूते रह जाने की जो सामर्थ्य विकसित होती है, वही इस संसार का पाठ है । वहीं इस संसार की सिखावन है । और तब संसार एक शत्रु नहीं, वरन एक विद्यालय हो जाता है और तब कुछ भी त्याग करके—सचेष्ट रूप से त्याग करके, छोड़कर भागने की पलायन वृत्ति को प्रोत्साहन नहीं मिलता । वरन् जीवन को उसकी समग्रता में, स्वीकार में आनन्द पूर्वक प्रभु का अनुग्रह मानकर जीने की दृष्टि विकसित होती है ।

भविष्य के लिए मैं ऐसे ही संन्यास की संभावना देखता हूं जो परमात्मा और संसार के बीच विरोध नहीं मानता, कोई खाई नहीं मानता वरन् संसार को परमात्मा का प्रगट रूप मानता है । परमात्मा को संसार का अप्रगट छिपा हुआ प्राण मानता है । **संन्यास** को ऐसा देखेंगे तो वह **जीवन को दीन हीन करने की बात नहीं, जीवन को और समृद्धि और संपदा से भर देने की बात है ।**

वास्तव में जब भी कोई व्यक्ति जीवन को बहुत ज़ोर से पकड़ लेता है तब ही जीवन कुरूप हो जाता है । **इस जगत में जो भी हम जोर से पकड़ेंगे, वही कुरूप हो जायेगा ।** और जिसे भी हम मुक्त रख सकते हैं, स्वतन्त्र रख सकते हैं, मुट्ठी बांधे बिना रख सकते हैं, वही इस जगत में सौंदर्य को, श्रेष्ठता को शिवत्व को उपलब्ध हो जाता है ।

जीवन के सब रहस्य ऐसे हैं, जैसे कोई मुट्ठी में हवा को बांधना चाहे । जितने जोर से बांधी जाती है मुट्ठी हवा मुट्ठी के उतने ही बाहर हो जाती है । खुली मुट्ठी रखने की सामर्थ्य हो तो मुट्ठी हवा से भरी रहती है और बंधी मुट्ठी ही हवा से खाली हो जाती है । उल्टी दिखाई पड़ने वाली, उलट–बांसी सी यह बात कि मुट्ठी खुली हो तो हवा भरी रहती है और बन्द की गई हो बन्द करने की आकांक्षा हो तो मुट्ठी खाली हो जाती है। जीवन के समस्त रहस्यों पर यह बात लागू होती है ।

कोई अगर प्रेम को पकड़ेगा, बांधेगा तो प्रेम नष्ट हो जायगा । कोई

अगर आनन्द को पकड़ेगा, बांधेगा तो आनन्द नष्ट हो जायेगा और अगर कोई जीवन को भी पकड़ना चाहे, बांधना चाहे तो जीवन भी नष्ट हो जाता है।

संन्यास का अर्थ है, खुली हुई मुट्ठीवाला जीवन। जहां हम कुछ भी बांधना नहीं चाहते, जहां जीवन एक प्रवाह है और सतत नए की स्वीकृति और कल जो दिखायेगा उसके लिये भी—परमात्मा को धन्यवाद का भाव।

बीते हुए कल को भूल जाना है। क्योंकि, बीता हुआ कल अब स्मृति के अतिरिक्त और कहीं नहीं है। **जो हाथ में है, उसे भी छोड़ने की तैयारी रखनी है, क्योंकि इस जीवन में सब कुछ क्षण भंगुर है।** जो अभी हाथ में है क्षण भर बाद हाथ के बाहर हो जायगा। जो सांस अभी भीतर है, क्षण भर बाद बाहर होगी। ऐसा प्रवाह है जीवन। इसमें जिसने भी रोकने की कोशिश की, वही गृहस्थ है और जिसने जीवन के प्रवाह में बहने की सामर्थ्य साध ली, जो प्रवाह के साथ बहने लगा—सरलता से सहजता से, असुरक्षा में, अनजान में, अज्ञात में—वही संन्यासी है।

संन्यास के तीन बुनियादी सूत्र ख्याल में ले लेने जैसे हैं। पहला **जीवन एक प्रवाह है। उसमें रुक नहीं जाना, ठहर नहीं जाना।** वहां कहीं घर नहीं बना लेना है। एक यात्रा है जीवन। पड़ाव हैं बहुत, लेकिन मंजिल कहीं भी नहीं। **मंजिल जीवन के पार परमात्मा में है।**

दूसरा सूत्र, जीवन जो भी दे उसके साथ पूर्ण संतुष्टि और पूर्ण अनुग्रह, क्योंकि **जहां असंतुष्ट हुए हम तो जीवन जो देता है, उसे भी छीन लेता है** और जहां संतुष्ट हुये हम कि जीवन जो नहीं देता, उसके भी द्वार खुल जाते हैं।

और तीसरा सूत्र, **जीवन में सुरक्षा का मोह न रखना।** सुरक्षा संभव नहीं है। तथ्य ही असम्भावना का है। **असुरक्षा ही जीवन है।** सच तो यह है कि सिर्फ मृत्यु ही सुरक्षित हो सकती है। जीवन तो असुरक्षित होगा ही। इसलिए **जितना जीवन्त व्यक्तित्व होगा, उतना असुरक्षित होगा** और जितना मरा हुआ व्यक्तित्व होगा, उतना सुरक्षित होगा।

सुना है मैंने, एक सूफी फकीर मुल्ला नसरुद्दीन ने अपने मरते वक्त वसीयत की थी कि मेरी कब्र पर दरवाजा बना देना और उस दरवाजे पर कीमती से कीमती, वजनी से वजनी, मजबूत से मजबूत ताला लगा देना,

लेकिन एक बात ध्यान रखना, दरवाजा ही बनाना, मेरी कब्र की चारों तरफ दीवाल मत बनाना। आज भी नसरुद्दीन की कब्र पर दरवाजा खड़ा है, बिना दीवालों के, ताले लगे हैं—जोर से, मजबूत। चाबियां समुद्र में फेंक दी गई, ताकि कोई खोज न ले। नसरुद्दीन की मरते वक्त यह आखिरी मजाक थी— संन्यासी की मजाक संसारियों के प्रति।

हम भी जीवन में कितने ही ताले डालें, सिर्फ ताले ही रह जाते हैं **चारों तरफ जीवन असुरक्षित है सदा। कहीं कोई दीवाल नहीं है।**

जो इस तथ्य को स्वीकार करके जीना शुरू कर देता है—कि जीवन में कोई सुरक्षा नहीं है, असुरक्षा के लिए राजी हूं मेरी पूर्ण सहमति है, वही संन्यासी है और **जो असुरक्षित होने को तैयार हो गया--निराधार होने को---उसे परमात्मा का आधार उपलब्ध हो जाता है।**

—०—

दो अनमोल सूत्र :

"सत्य को पाना है तो मिटना होता है। मृत्यु के मूल्य पर अमृत मिलता है। बूंद जब स्वयं को सागर में खो देती है, तो वह सागर हो जाती है।"

०

सत्य सिद्धांत नहीं, अनुभूति है। इससे शास्त्र में नहीं, स्वयं में ही उसे खोजना है। शब्दों से हुआ उसका ज्ञान तो अक्सर अज्ञान से भी घातक है। क्योंकि अज्ञान में एक पीड़ा है और उसके ऊपर उठने की आकांक्षा है, लेकिन तथाकथित थोथा शास्त्रीय ज्ञान तो उल्टे अहंकार की पुष्टि बन जाता है। अहंकार अज्ञान से भी घातक है। वस्तुतः तो ज्ञान का अहंकार अज्ञान का ही अत्यन्त घनीभूत रूप है---इतना घनीभूत कि वह फिर अज्ञान ही प्रतीत नहीं होता है।

० ०

———

पत्रों के अमृत आलोक से :

(भगवान श्री द्वारा प्रेमियों को लिखे गये कुछ पत्र)

मेरे प्रिय,

प्रेम । स्वयं के मन की ही गहराई को कहां जानते हो अभी ?
सतह की लहरों से ही तो परिचय है अभी केवल !
विचार नहीं है जहां वहीं स्वयं से साक्षात्कार है।
छोड़ो लहरों को ।
पार उठो विचारों के ।
और तब ही पाओगे पहचान स्वयं को ।
और जो जान लेता है स्वयं को उसे जानने को फिर
कुछ भी शेष नहीं रह जाता है ।

रजनीश के प्रणाम
१–४–१९७१

—०—

मेरे प्रिय
प्रेम । सत्य मिल सकता है क्षण भर में ।
चाहिए त्वरा ।
समग्र प्राणों की आहुति देने का संकल्प क्षण ही सत्य का
विस्फोट बन जाता है ।
अन्यथा जन्म–जन्म खोते चले जाते हैं—व्यर्थ ही
बिना किसी यात्रा के ।
कोल्हू के बैलों जैसे

रजनीश के प्रणाम.
२–४–१९७१

—००—

मेरे प्रिय
प्रेम । तुम्हारा यह लगना ठीक ही है कि जैसे मैं चौबीस घंटे तुम्हारे
साथ हूं
हूं ही ।

बदलना है तुम्हें।

नया जन्म देना है तुम्हें।

तो तुम्हारा पीछा करना ही पड़ेगा न!

प्रभु के सैनिक तो तुम हो ही—बस वर्दी पहन कर पंक्ति में खड़े भर हो जाने की देर है।

और वह भी शीघ्र ही हो जायगा।

तुम्हारी नियति की रेखायें बहुत साफ हैं और तुम्हारे संबंध में आश्वासन पूर्वक भविष्यवाणी की जा सकती है।

विगत दो जन्मों के तुम्हारे संस्कार भी संन्यासी के हैं—तुम्हारी हड्डियों, तुम्हारे मांस, तुम्हारी मज्जा में फकीरी की गहरी छाप है।

अब जो बीज है उसे वृक्ष बनाना है और जो संभावना है उसे सत्य करना है।

और मैं एक माली की भांति तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूं।

रजनीश के प्रणाम

१३–३–१९७१

पुनश्च :

जून में आकर मिल जाओ।

(उपर्युक्त तीनों पत्र श्री रत्नेशप्रसाद अग्रवाल, कॉलेज आफ इंजीनियरिंग एंड टेक्नालाजी, रायपुर को लिखे गये।)

०

मेरे प्रिय,

प्रेम। समय पर–ठीक समय पर ही वह नाव मिलती है जो कि पार ले जाती है।

ऐसा नहीं कि नाव पहले नहीं थी।

नाव तो सदा है लेकिन यात्री को जब तक पार न जाना हो तब तक वह दिखाई नहीं पड़ती है।

ऐसा भी नहीं है कि नाव अदृश्य है।

नाव तो सदा ही आंखों के सामने है लेकिन जब तक यात्री को पार नहीं जाना है तब तक **उसका ध्यान ही** नाव पर नहीं जाता है।

लेकिन अब चिन्ता न करो।

तुम्हें पार जाना है ।
नाव सामने है ।
फिर चिन्ता कैसी ?

रजनीश के प्रणाम.
२२–१–१९७१

(प्रति : कृष्णदत्त दीक्षित
१२।३४६, बैलासिस ब्रिज, तारदेव,
बम्बई–३४)

———

प्रिय ब्रह्मदत्त,

प्रेम । साथ ही हूं तुम्हारे ।
बोलता भी हूं ।
तुम सुनते भी हो ।
लेकिन, निश्चय ही अभी समझ नहीं पाते हो ।
यह द्वार है नया ।
आयाम है अपरिचित ।
भाषा है अनजान ।
पर धैर्य रखो ।
धीरे–धीरे सब समझ पाओगे ।
शब्दहीन सम्वाद में दीक्षा दे रहा हूं ।
मौन हो सुनते रहो ।
समझने की अभी चिन्ता ही न करो ।
क्योंकि उससे भी मौन भंग होता है ।
और मन गति करता है ।
अभी तो बस सुनो ही ।
सुनने की गहराई ही समझने का जन्म बनती है ।

–रजनीश के प्रणाम.
२२–१–१९७१.

(प्रति : ब्रह्मदत्त, तारदेव, बम्बई–३४)

—०—

मेरे प्रिय,

प्रेम । आपकी साधना से प्रसन्न हूं ।

इतना संकल्प हो तो कुछ भी असंभव नहीं है ।

लेकिन, ध्यान रखें कि सोच विचार में नहीं पड़ना है ।

प्रयोग करें—विचार नहीं ।

ध्यान करें—चिंतन नहीं ।

चिंतन को फिलहाल छुट्टी दे दें ।

इससे चिंतन को भी विश्राम मिलेगा और आपको भी ।

जो ज्ञात नहीं उसके संबंध में सोचने–विचारने का उपाय ही नहीं है ।

विचार तो ज्ञात की ही जुगाली है ।

ध्यान है अज्ञात में छलांग ।

अज्ञात में ही यात्रा करें ।

लौट–लौटकर पीछे न देखें ।

अनुभव के बिना कुछ भी न होगा ।

और विचारणा अनुभव की परिपूरक (Substitute) नहीं है ।

इसीलिए तो दर्शन (Philosophy) धर्म (Religion) नहीं है ।

रजनीश के प्रणाम

२७–१–१९७१

—०—

मेरे प्रिय,

प्रेम । ध्यान में सफलता मिलते ही अतीत जन्मों की स्मृति यात्रा पर भेज सकूंगा ।

यह कार्य कठिन नहीं है ।

असली कठिनाई ध्यान की ही है ।

लेकिन, जितने संकल्प से ध्यान में लगे हैं, उससे आशा बंधती है कि वह भी कठिन सिद्ध नहीं होगा ।

वैसे तो ध्यान भी सरल है ।

लेकिन, मनुष्य चित्त है संशय से कंपित, निर्णय से हीन,

संकल्प में दरिद्र—इसलिये ही ध्यान कठिन हो जाता है ।

निसंशय हो आगे बढ़ें ।

निर्णायक हो आगे बढ़ें।
संकल्प में समग्र हो आगे बढ़ें।
मैं सदा साथ हूं।

रजनीश के प्रणाम
१४–२–१९७१

(श्री राणूलाल संकलेचा धमतरी को लिखे गए पत्र)

—०—

एक संस्मरण

रात्रि एक मेहमान आये थे। मेरे एकाकी जीवन का उन्हें कारण और घटना दोनों का बोध था। इसी प्रसंग में कुछ पूछने लगे थे। मैंने कहा : "जीवन कुछ प्रश्नों का जोड़ है और ये ऐसे प्रश्न हैं जिनके उत्तर नए प्रश्न बन जाते हैं। उत्तर की पीड़ा में जीवन संघर्ष और तनाव में जीने लगता है। एक ऐसे ही प्रश्न ने दो जिन्दगियों के बीच भटकन पैदा कर दी है। और इस भटकन से कुछ टूट रहा है। प्रेम के जो तन्तु हैं वे टूट रहे हैं।" जब मैंने अपनी बात समाप्त की, देखा कि मेरे सिरहाने रखी आ० रजनीश के अमृत–पत्रों का संकलन 'प्रेम के फूल' उनके हाथ में है। पहिले वे उसे बन्द किये यों ही लिये रहे। मैं अपने कार्य में लग गया।

थोड़ी देर बाद उन्होंने पुकारा। कहने लगे—'आह मैं कितने भ्रम में था। मैंने सोचा यह पुस्तक तुम्हारी पत्नी की रिक्तता की पूरक हैं, Substitute है, नहीं नहीं ...। यह तो बड़ी ऊंची है। और मैं हँस,पड़ा। मनुष्य की विकृत निगाह प्रेम को वासना मान बैठी। प्रेम को Sex समझ बैठी। शब्दों पर टिका जीवन ऐसे ही जीता है। उन्होंने बात स्पष्ट करते हुए कहा कि मैंने समझा था कि यह कोई 'प्रेम-उपन्यास' (Love affair Novel) होगा। मैंने कहा : जी हां! यह जीवन्त प्रेम का उपन्यास है। और मैंने एक पत्र उन्हें सुनाया– 'दृश्य परमात्मा पदार्थ है और अदृश्य पदार्थ परमात्मा है। परमात्मा और पदार्थ के बीच इस गहरे सत्य में जीवन के सत्व-सूत्र तैर रहे थे।

शायद वे पहिली बार प्रेम की अनुभूति जान सके थे और वे यह समझ सके थे कि यह पुस्तक वे 'प्रेम के फूल' हैं जिनमें परमात्मा की सुगन्ध प्रतिपल बह रही है।

निहालचन्द जैन, एम. एस सी.
पृथ्वीपुर (टीकमगढ़) म. प्र.

नव-संन्यास अंतर्राष्ट्रीय : एक अंतर्दृष्टि

० ० ०

(प्रस्तुत सामग्री तृतीय गीता ज्ञान यज्ञ, पूना (महाराष्ट्र) में ३ फरवरी, १९७१ की रात्रि को दिये गये भगवान श्री रजनीश के प्रवचन का एक अंश है। नव संन्यास (Neo-Sannyas) आन्दोलन के पीछे भगवान श्री की क्या अन्तर्दृष्टि काम कर रही है, इससे पाठक परिचित होंगे)

— सम्पादक

० प्रश्नकर्त्ता : भगवान श्री, एक निवेदन है। दो तीन दिनों से अनेकानेक श्रोतागण आपके आस-पास दिखायी पड़ने वाले नये संन्यास और नये संन्यासियों के संबंध में कुछ बातें आपसे ही सुनना चाहते हैं। कृपया इस संबंध में बतायें।

भगवान श्री : यह जो भी मैं कह रहा हूं, संन्यास के संबंध में ही कह रहा हूं। यह सारी गीता संन्यास का ही विवरण है। और **जिस संन्यास की मैं बात कर रहा हूं वह वही संन्यास है जिसकी कृष्ण बात कर रहे हैं**— करते हुए अकर्ता हो जाना, करते हुए भी ऐसे हो जाना जैसे मैं करने वाला नहीं हूं। बस संन्यास का यही लक्षण है।

गृहस्थ का क्या लक्षण है ? **गृहस्थ का लक्षण है, हर चीज में कर्ता हो जाना। संन्यासी का लक्षण है हर चीज में अकर्ता हो जाना।** संन्यास जीवन को देखने का और ही ढंग है। बस ढंग का फर्क है। संन्यासी और गृहस्थी में घर का फर्क नहीं है, ढंग का फर्क है। संन्यासी और गृहस्थी में जगह का फर्क नहीं है, भाव का फर्क है। संन्यासी और गृहस्थी में परिस्थिति का फर्क नहीं है, मनःस्थिति का फर्क है। हम कहीं भी चले जांय हम सभी संसार में ही होंगे। कोई कहीं हो—जंगल में बैठे, पहाड़ पर बैठे, गिरि कन्दराओं में बैठे, संसार के बाहर जाने का उपाय परिस्थिति बदलकर नहीं, संसार के बाहर जाने का उपाय है मनःस्थिति बदलकर (बाई द म्यूटेशन ऑफ द माइंड) मन को ही रूपांतरित करके **मैं जिसे संन्यास कह रहा हूं वह**

मन को रूपांतरित करने की एक प्रक्रिया है। दो तीन उसके अंग हैं, उनकी आपसे बात कर दूं।

पहला तो, **जो जहां है, वहां से हटे नहीं**। क्योंकि हटते केवल कमजोर हैं। भागते केवल वे ही हैं जो भयभीत हैं। और जो संसार को ही झेलने में भयभीत है वह परमात्मा को नहीं झेल सकेगा यह मैं आपसे कह देता हूं। जो संसार का ही सामना करने में डर रहा है वह परमात्मा का सामना कर पायेगा ? नहीं कर पायेगा, यह मैं आपसे कह देता हूं। संसार जैसी कमजोर चीज जिसे डरा देती है, परमात्मा जैसा विराट जब सामने आयेगा तो उसकी आंखें ही झंप जायेंगी, वह ऐसा भागेगा कि फिर लौट कर देखेगा भी नहीं। यह क्षुद्र सा चारों तरफ जो है, यह डरा देता है तो उस विराट के सामने खड़े होने की क्षमता नहीं होगी। और फिर अगर परमात्मा यही चाहता है कि लोग सब छोड़कर भाग जायं तो उसे सबको सबमें भेजने की जरूरत ही नहीं रह जाती। नहीं, उसकी मर्जी और मंशा कुछ और है। मर्जी और मंशा यही है कि पहले लोग क्षुद्र को सहने में समर्थ हो जायं, ताकि विराट को सह सकें।

संसार सिर्फ एक प्रशिक्षण है, एक ट्रेनिंग है। इसलिए जो ट्रेनिंग को छोड़कर भागता है उस भगोड़े को, एस्केपिस्ट को मैं संन्यासी नहीं कह रहा हूं। जीवन जहां है वहीं है। **संन्यासी हो गये, फिर तो भागना ही नहीं।** पहले चाहे भाग भी जाते तो मैं माफ कर देता। संन्यासी हो गये फिर तो भागना ही नहीं। फिर तो वहीं जम कर खड़े हो जाना है। क्योंकि फिर तो अगर संन्यास संसार के सामने भागता हो तो कौन कमजोर है, कौन सबल है ? फिर तो मैं कहता हूं कि अगर संन्यास इतना कमजोर है कि भागना पड़ता है तो फिर संसार ही ठीक है। फिर सबल को ही स्वीकार करना उचित है।

तो पहली तो बात मेरे संन्यास की यह है कि भागना मत। जहां खड़े हैं वहीं, जिन्दगी की सघनता में पैर जमा कर **उसे प्रशिक्षण बना लेना। उस सबसे सीखना, उस सबसे जागना, उस सबको अवसर बना लेना।** पत्नी होगी पास, भागना मत। क्योंकि पत्नी से भागकर कोई स्त्री से नहीं भाग सकता। पत्नी से भागना तो बहुत आसान है। पत्नी से तो वैसे ही भागने का मन पैदा हो जाता है, पति से भागने का मन पैदा हो जाता है। जिसके पास हम होते हैं उससे ऊब जाते हैं। नये की तलाश मन करता है। पत्नी

से भागना बहुत आसान है। भाग जायं, स्त्री से न भाग पायेंगे। और जब पत्नी जैसी स्त्री को निकट पाकर स्त्री से मुक्त न हो सके तो फिर कब मुक्त हो सकेंगे ? अगर पति जैसे प्रीतिकर मित्र को निकट पाकर पुरुष की कामना से मुक्ति न मिली तो फिर छोड़कर कभी न मिल सकेगी।

इस देश ने पति और पत्नी को सिर्फ 'काम' का उपकरण नहीं समझा, सेक्स–वासना का साधन नहीं समझा है। इस मुल्क की गहरी समझ आज भी कुछ और है और वह यह है कि पति पत्नी प्रारम्भ करें वासना से और अन्ततः पहुंच जायं निर्वासना पर। इसमें वे एक दूसरे के सहयोगी बनें। स्त्री सहयोगी बने पुरुष की कि पुरुष स्त्री से मुक्त हो जाय। पुरुष सहयोगी बने पत्नी का कि पत्नी पुरुष की कामना से मुक्त हो जाय। यह अगर सहयोगी बन जायें तो बहुत शीघ्र निर्वासना को उपलब्ध हो सकते हैं। लेकिन ये इसमें सहयोगी नहीं बनते। पत्नी डरती है कि कहीं पुरुष निर्वासना को उपलब्ध न हो जाय। वह डरी रहती है। अगर पति मंदिर जाता है तो वह ज्यादा चौंकती है, सिनेमा जाता है तो विश्राम करती है। पति चोर हो जाय समझ में आता है, प्रार्थना, भजन–कीर्तन करने लगे समझ में बिल्कुल नहीं आता है। खतरा है। पति भी डरता है कि पत्नी कहीं निर्वासना में न चली जाय।

अजीब है हालत। हम एक दूसरे का शोषण करते हैं इसलिए इतने भयभीत हैं। हम एक दूसरे के मित्र नहीं है। क्योंकि **मित्र तो वही जो वासना के बाहर ले जाय।** क्योंकि वासना दुःख है, क्योंकि वासना दुष्पूर है। वासना कभी भरेगी नहीं। वासना में हम ही मिट जायेंगे, वासना नहीं मिटेगी। तो मित्र तो वही है, पति तो वही है, पत्नी तो वही है, जो वासना से मुक्त करने में साथी बने। और तब शीघ्रता से यह हो सकता है।

इसलिए मैं कहता हूं पत्नी को मत छोडो, पति को मत छोड़ो, किसी को मत छोड़ो। इस प्रशिक्षण का उपयोग करो। **परमात्मा तक पहुंचने के लिए संसार को बनाओ सीढ़ी।** संसार को दुश्मन मत बनाओ, बनाओ सीढ़ी। चढ़ो उस पर, उठो उससे। उससे ही उठकर परमात्मा को छुओ। और संसार सीढ़ी बनने के लिए है। इसलिए यह पहली बात है।

दूसरी बात। **संन्यास अब तक साँप्रदायिक रहा है जो कि दुखद है,** जो कि संन्यास को गंदा कर जाता है। **संन्यास धर्म है, सम्प्रदाय नहीं।** गृहस्थ संप्रदायों में बटा हो समझ में आता है। उसके कारण हैं। जिसकी

दृष्टि बहुत सीमित है वह जो विराट है उसे पकड़ नहीं पाता है। वह हर चीजों में सीमा बनाता है, हर चीज को खंडों में बांट लेता है तभी पकड़ पाता है। आदमी आदमी की सीमाएं हैं। अगर आप बीस आदमी पिकनिक को जांय तो आप पायेंगे कि पिकनिक पर आप पहुंचे कि चार पांच ग्रुप में टूट जायेंगे। बीस आदमी इकट्ठे नहीं रहेंगे। तीन-तीन चार-चार की टुकड़ी हो जायगी। अपनी-अपनी बातचीत शुरू कर देंगे। दो चार हिस्से बन जायेंगे। बीस आदमी इकट्ठे नहीं हो पाते हैं। ऐसी आदमी की सीमा है। सारी मनुष्यता एक है यह साधारण आदमी के सीमा के बाहर है सोचना। सब मंदिर, सब मस्जिद उसी परमात्मा के हैं, यह सोचना मुश्किल है। साधारण की सीमा के लिए कठिन होगा लेकिन संन्यासी असाधारण होने की घोषणा है।

दूसरी बात, **संन्यास धर्म में प्रवेश है।** हिन्दू धर्म में नहीं, मुसलमान धर्म में नहीं, ईसाई धर्म में नहीं, जैन धर्म में नहीं—धर्म में। इसका क्या मतलब हुआ। हिंदू धर्म के खिलाफ ?—नहीं। इस्लाम धर्म के खिलाफ ?—नहीं। जैन धर्म के खिलाफ ?—नहीं। वह जो जैन धर्म में धर्म है उसके पक्ष में और जो जैन है उसके खिलाफ। और वह जो हिन्दू धर्म में धर्म है उसके पक्ष में, और वह जो हिन्दू है उसके खिलाफ। और वह जो इस्लाम धर्म में धर्म है उसके पक्ष में और वह जो इस्लाम है उसके खिलाफ। **सीमाओं के खिलाफ और असीम के पक्ष में।** आकार के खिलाफ और निराकार के पक्ष में है।

संन्यासी किसी धर्म का नहीं, सिर्फ धर्म का है। वह मस्जिद में ठहरे, मंदिर में ठहरे, कुरान पढ़े, गीता पढ़े। महावीर, बुद्ध, लाओत्से, नानक जिससे उसका प्रेम हो, उससे प्रेम करे। लेकिन जाने कि जिससे वह प्रेम कर रहा है यह दूसरों के खिलाफ घृणा का कारण नहीं, बल्कि यह प्रेम ही उसकी सीढ़ी बनेगी उस अनन्त में छलांग लगाने के लिए जिसमें सब एक हो जाता है। नानक को बनायें सीढी, बनायें। बुद्ध, मोहम्मद को बनाना चाहें, बुद्ध, मोहम्मद को बनायें। कूद जाय वहीं से पर कूदना है अनन्त में। और इस अनन्त का स्मरण रहे तो इस पृथ्वी पर दो घटनायें घट सकती हैं।

संन्यासी जहां है वहीं रहे तो करोड़ों संन्यासी सारी पृथ्वी पर हो सकते हैं। संन्यासी छोड़ के भागे तो ध्यान रखना भविष्य में बीस-पच्चीस साल के बाद, इस सदी के पूरे होते होते संन्यास अपराध होगा, क्रिमिनल

एक्ट हो जायगा। रूस में हो गया, चीन में हो गया, आधी दुनिया में हो गया। आज रूस और चीन में कोई संन्यासी होकर नहीं रह सकता। क्योंकि वह कहते हैं जो करेगा मेहनत वह खायेगा। जो मेहनत नहीं करेगा वह शोषक है, एक्सप्लाइटर है। उसको हटाओ। वह अपराधी है। वहां संन्यास बिखर गया। चीन में बड़ी गहरी परम्परा थी संन्यास की, वह बिखर गयी, टूट गयी, मॉनेस्ट्री उखड़ गयी। तिब्बत गया। **शायद पृथ्वी पर सबसे ज्यादा गहरे संन्यास के प्रयोग तिब्बत ने किये हैं, लेकिन सब मिट्टी हो गया है।** हिन्दुस्तान में भी ज्यादा देर नहीं लगेगी। लेनिन ने कहा था १९२० में कि कम्यूनिज्म का रास्ता मास्को से पेकिंग और पेकिंग से कलकत्ता होता हुआ लंदन जायेगा। कलकत्ते तक पैर सुनायी पड़ने लगे हैं। लेनिन की भविष्यवाणी सही होने का डर है।

संन्यास अब तो एक तरह से बच सकता है कि संन्यासी स्व-निर्भर हो—समाज पर, किसी पर निर्भर होकर न जिये। तभी हो सकता है स्व-निर्भर जब वह संसार में हो। संन्यासी संसार से भागकर स्व-निर्भर कैसे हो सकता है ?

थाईलैंड में चार करोड़ की आबादी है। बीस लाख संन्यासी हैं वहां। मुल्क घबड़ा गया। लोग परेशान हो गये। बीस लाख लोगों को चार करोड़ की आबादी कैसे खिलाये, कैसे पिलाये। क्या क्या करे। अदालतें विचार करती हैं कानून बनाने का। संसद निर्णय लेती है कोई सख्त नियम बनाओ। नियम बनाओ कि सिर्फ सरकार जब आज्ञा दे किसी आदमी को तभी वह संन्यासी हो सकता है। यदि संन्यास की आज्ञा सरकार से लेना पड़े तो उसमें भी रिश्वत हो जायेगी। उसमें भी जो रिश्वत लगा सकेगा वह संन्यासी हो जायेगा। यदि संन्यासी होने के लिए रिश्वत देनी पड़ेगी, सरकारी लाइसेंस लेना पड़ेगा तो फिर संन्यास की सुगंध, संन्यास की स्वतन्त्रता कहां रह जायगी !

इसलिए मैं यह देखता हूं भविष्य को ध्यान में रखकर कि अब संन्यास का एक नया अभियान होना चाहिये जिसमें कि संन्यासी घर में होगा, गृहस्थ होगा, पति होगा, पिता होगा, भाई होगा। शिक्षक, दूकानदार मजदूर—वह जो है वही होगा। वह सबका होगा। सब धर्म उसके अपने होंगे वह सिर्फ धार्मिक होगा। धर्मों के विरोध ने दुनिया को बहुत गन्दी कलह से भर दिया। इतना दुखद हो गया सब कि ऐसा लगने लगा कि

धर्मों से शायद फायदा कम हुआ नुकसान ज्यादा हुआ। जब देखो तब धर्म के नाम पर खून बहता है। और जिस धर्म के नाम पर खून बहता हो अगर बच्चे उस धर्म को इन्कार कर दें और जिन पंडितों की बकवास से खून बहता हो अगर बच्चे उन पंडितों को ही इंकार दें और कहें कि बन्द करो तुम्हारी किताबें, तुम्हारे शास्त्र — अब नहीं चाहिए तो कुछ आश्चर्य तो नहीं है, स्वाभाविक है। यह बन्द करना पड़ेगा। यह बन्द तभी हो सकता है एक ही रास्ता है इसका। और वह रास्ता यह है कि **संन्यास का फूल इतना ऊंचा उठे सीमाओं से कि सब धर्म उसके अपने हो जायँ और कोई एक धर्म उसका अपना धर्म न रहे तो हम इस पृथ्वी को जोड़ सकते हैं।**

अब तक धर्मों ने तोड़ा उसे कहीं से जोड़ना पड़ेगा। इसलिये मैं कहता हूं कि हिंदू आयें, मुसलमान आयें, जैन आयें, इसाई आयें। जिसे चर्च में प्रार्थना करनी हो वह चर्च में करे। मंदिर में तो मंदिर में, स्थानक में तो स्थानक में, मस्जिद में तो मस्जिद में। जिसे जहां जो करना हो करे। लेकिन वह अपने मन से संप्रदाय का विशेषण अलग कर दे, मुक्त हो जाय, सिर्फ संन्यासी हो जाय। सिर्फ धर्म का हो जाय। यह दूसरी बात है।

और तीसरी बात मेरे संन्यास में सिर्फ एक अनिवार्यता है, एक अनिवार्य शर्त है और वह है 'ध्यान'। बाकी कोई व्रत, नियम ऊपर से मैं थोपने के लिये राजी नहीं हूं। क्योंकि जो भी व्रत और नियम ऊपर से थोपे जाते हैं वे पाखण्ड का निर्माण कर देते हैं। सिर्फ ध्यान की विधि (टेक्नीक) संन्यासी सीखे, प्रयोग करे, ध्यान में गहरा उतरे। और मेरी अपनी समझ और सारी मनुष्य जाति के अनुभव का सार, निचोड़ यह है कि जो **ध्यान में गहरा उतर जाय वह योगाग्नि में ही गहरा उतर रहा है।** उसकी वृत्तियां भस्म हो जाती हैं, उसके इंद्रियों के रस खो जाते हैं। **वह धीरे धीरे सहज— जबर्दस्ती नहीं, बलात् नहीं सहज रूपांतरित होता चला जाता है।** उसके भीतर से ही सब बदल जाता है। उसके बाहर के सब सम्बन्ध वैसे ही बने रहते, वह भीतर से बदल जाता इसलिये सारी दुनिया उसके लिए बदल जाती है। **ध्यान के अतिरिक्त संन्यासी के लिए और कोई अनिवार्यता नहीं है।**

यह **कपड़े** आप देखते हैं **गैरिक**—संन्यासी पहने हुए हैं। यह सुबह जैसा मैंने कहा, गांठ बाँधने जैसा इनका उपयोग है। चौबीस घंटे याद रह सकेगा, स्मरण (रिमेम्बरिंग) रह सकेगी कि मैं संन्यासी हूं। बस, यह स्मरण इनको रह सके इसलिए इन्हें गैरिक वस्त्र दे दिये हैं। **गैरिक वस्त्र** जानकर भी

दिये हैं, **वे अग्नि के रंग के वस्त्र हैं। भीतर भी ध्यान की अग्नि जलानी है।** उसमें सब जला डालना है। भीतर भी ध्यान का यज्ञ जलाना है, उसमें सब आहुति दे देनी है।

उनके गलों में आप **मालायें** देख रहे हैं। **उन मालाओं में एक सौ आठ गुरिये हैं। वे एक सौ आठ ध्यान की विधियों के प्रतीक हैं।** और उन्हें स्मरण रखने के लिए दिया है कि वह भलीभांति जानें कि चाहे अपने हाथ में एक ही गुरिया हो लेकिन और एक सौ सात मार्गों से भी मनुष्य पहुंचा है, पहुंच सकता है। और एक सौ आठ गुरिये कितने ही अलग हों, उनके भीतर पिरोया हुआ धागा एक ही है। उस एक का स्मरण बना रहे एक सौ आठ विधियों में ताकि कभी उसके मन में यह ख्याल न आये और कोई एकांगीपन न पकड़ जाय कि मेरा ही मार्ग जिसमें मैं हूं, वही रास्ता पहुंचाता है। नहीं, सभी रास्ते पहुंचाते हैं।

उनमें मालाओं में एक तस्वीर आप देख रहे हैं, शायद आपको भ्रम होगा कि मेरी है। मेरी बिल्कुल नहीं है। क्योंकि मेरी तस्वीर उतारने का कोई उपाय नहीं है। **तस्वीर किसी की उतारी नहीं जा सकती,** सिर्फ शरीरों की उतारी जा सकती है। **मैं उनका गवाह हूं इसलिए उन्होंने मेरे शरीर की तस्वीर लटका दी है।**

मैं सिर्फ गवाह हूं, गुरु नहीं हूं। क्योंकि मैं मानता हूं कि गुरू तो सिवाय परमात्मा के और कोई भी नहीं है। मैं सिर्फ विटनेस (साक्षी) हूं कि मेरे सामने उन्होंने कसम ली है इस संन्यास की। मैं उनका गवाह भर हूं। और इसलिए मेरे शरीर की आकृति लटकाए हुए हैं, **ताकि उनको स्मरण रहे कि उनके संन्यास में वह अकेले नहीं है, एक गवाह भी है।** और उनके डूबने के साथ उनका गवाह भी डूबेगा। इतने स्मरण भर के लिए तस्वीर है।

ध्यान में वे गहरे उतरें, ध्यान के बहुत रास्ते हैं। अभी उनको दो रास्तों पर प्रयोग करवा रहा हूं। दोनों रास्ते 'सिंक्रोनाइज' कर सकें इस तरह के हैं। उनमें तालमेल हो सके, इस तरह के हैं। एक ध्यान की प्रक्रिया मैं उनसे करवा रहा हूं जो कि प्रगाढ़तम प्रक्रिया है, बहुत 'व्हिगरस' है और इस सदी के योग्य है। उस ध्यान की प्रक्रिया के साथ उनको कीर्तन और भजन के लिए भी कह रहा हूं। क्योंकि, **वह ध्यान की प्रक्रिया करने के बाद कीर्तन साधारण कीर्तन नहीं है जो आप कहीं भी देख लेते हैं।** आप जब

देखते हैं कीर्तन तो आप सोचते होंगे ठीक है, कोई भी ऐसा साधारण कीर्तन कर रहा है। इस भूल में आप मत पड़ना क्योंकि जिस ध्यान के प्रयोग को वे कर रहे हैं उस प्रयोग के बाद यह कीर्तन और ही भीतरी रस की धार छोड़ देता है। आप भी ध्यान के उस प्रयोग को करके ऐसा कीर्तन करेंगे तब आपको पता चलेगा कि यह कीर्तन साधारण कीर्तन नहीं है। **यह कीर्तन ध्यान की प्रक्रिया का आनुषांगिक अंग है। और उस आनुषांगिक अंग में जब वे लीन और डूब जाते हैं तब वे करीब-करीब अपने में नहीं होते, परमात्मा में होते हैं।** और वह जो होने का अगर एक क्षण भी मिल जाय चौबीस घंटे में तो काफी है। उससे जो अमृत की एक बूंद मिल जाती है वह चौबीस घटों को जीवन के रस से भर जाती है। जिन मित्रों को जरा भी ख्याल हो वह हिम्मत करें और ध्यान रखें।

अभी कल ही कोई मेरे पास आया था, उसने कहा, सत्तर प्रतिशत तो मेरी इच्छा है कि लूं संन्यास। तीस प्रतिशत मन डांवाडोल होता है। इसलिए नहीं लेता हूं। तो मैंने कहा—तीस प्रतिशत मन कहता है मत लो तो तुम नहीं लेते। तीस प्रतिशत की मानते हो और सत्तर प्रतिशत कहता है लो और सत्तर प्रतिशत की नहीं मानते हो? तो तुम्हारे पास बुद्धि है? और कोई सोचता हो, 'हण्ड्रेड परसेंट', सौ प्रतिशत मन होगा तब लेंगे तो मौत पहले आ जायगी। हण्ड्रेड परसेंट मरने के बाद होता है। इससे पहले कभी मन होता नहीं। सिर्फ मरने के बाद जब आपकी लाश चढ़ाई जाती है चिता पर तब 'हण्ड्रेड परसेंट' मन संन्यास का होता है, लेकिन तब कोई उपाय नहीं रहता। जिन्दगी में कभी मन सौ प्रतिशत किसी बात पर नहीं होता। लेकिन जब आप क्रोध करते हैं तब आप 'हण्ड्रेड परसेंट' मन के लिए रुकते हैं? जब आप चोरी करते हैं तब आप हण्ड्रेड परसेंट मन के लिए रुकते हैं? जब बेईमानी करते हैं तब हण्ड्रेड परसेंट मन के लिए रुकते हैं? कहते हैं क्या कि अभी बेईमानी नहीं करूंगा क्योंकि अभी मन का एक हिस्सा कह रहा है, मत करो। सौ प्रतिशत हो जाने दो। लेकिन जब संन्यास का सवाल उठता है तब सौ प्रतिशत के लिये रुकते हैं। बेईमानी किस के साथ कर रहे हैं? **आदमी अपने को धोखा देने में बहुत कुशल है।**

एक आखिरी बात फिर अभी कीर्तन-भजन में संन्यासी डूबेंगे, आपको भी आमंत्रण देता हूं, खड़े देखें मत। खड़े देखकर कुछ पता नहीं चलेगा, लोग

नाचते हुए दिखायी पड़ेंगे। **डूबें उनके साथ तो पता चलेगा उनके भीतर क्या हो रहा है। यह रस का एक कण अगर आपको भी मिल जाय तो शायद आपकी जिन्दगी में फर्क हो।**

संन्यास या शुभ का कोई भी ख्याल जब भी उठ आये तब देर मत करना क्योंकि अशुभ में तो हम कभी देर नहीं करते, अशुभ को कोई 'पोस्टपोन' नहीं करता। शुभ को हम 'पोस्टपोन' करते हैं।

अनेक मित्र खबर ले आते हैं कि **कहीं मेरा संप्रदाय तो नहीं बन जायगा,** कहीं ऐसा तो नहीं हो जायगा ? **कहीं कोई मत, पंथ तो नहीं बन जायगा ?** मत पंथ ऐसे ही बहुत हैं, नये मत, पंथ की कोई जरूरत नहीं है। बीमारियां ऐसे ही काफी हैं और एक बीमारी जोड़ने की कोई जरूरत नहीं है। इसलिए आपसे कहता हूं, **यह कोई सम्प्रदाय नहीं है। संप्रदाय बनता ही किसी के खिलाफ है।**

ये संन्यासी किसी के खिलाफ नहीं हैं। ये सब धर्मों के भीतर जो सारभूत है, उसके पक्ष में हैं। कल तो एक मुसलमान महिला ने संन्यास लिया। छः दिन पहले एक ईसाई युवक संन्यास लेकर गया है। ये जायेंगे अपने चर्चों में, अपनी मस्जिदों में, अपने मंदिरों में। इनमें जैन हैं, हिन्दू हैं, मुसलमान हैं, ईसाई हैं। उनसे कुछ उनका छीनना नहीं है। उनके पास जो शुद्धतम है, उसे ही उनसे कह देना है।

अभी गीता पर बोल रहा हूं, अगले वर्ष कुरान पर बोलूंगा, फिर बाइबिल पर बोलूंगा ताकि जो जो शुद्ध वहां है सब पूरी की पूरी बात मैं आपको कह दूं। जिसे जहां से लेना हो वहां से ले ले। जिसे जिस कुएं से पीना हो पानी पी ले, क्योंकि पानी एक ही सागर का है। वह कुएं का मोह भर न करे, इतना भर न कहे कि मेरे कुए में ही पानी है और किसी के कुए में पानी नहीं है। फिर कोई संप्रदाय नहीं बनता, कोई मत नहीं बनता, कोई पंथ नहीं बनता।

सोचें और स्फुरणा लगती हो तो संन्यास में कदम रखें, जहां हैं वहीं। कुछ आपसे छीनता नहीं। आपके भीतर के व्यर्थ को ही तोड़ना है, सार्थक को वहीं रहने देना है।

—००—

साधकों के पत्र भगवान श्री को

प्रिय आचार्य रजनीश जी,

सप्रेम नमस्कार। इस पत्र का आरंभ मैं 'आदरणीय', 'गुरुवर्य', 'तीर्थरूप' ऐसे कोई विशेषण में करना चाहता था। लेकिन सबसे अच्छा और सच्चा विशेषण प्रतीत हुआ ' प्रिय' ! और इसी विशेषण से मैंने आपको संबोधित किया। मुझे विश्वास है आप बुरा नहीं मानेंगे, सब कुछ समझ जायेंगे, इसे अवज्ञा नहीं समझेंगे।

वैसे तो मैं एक ४६ (छयालीस) साल का 'बच्चा' हूं। इस नगर (नागपुर) के धनवटे नेशनल कॉलेज में अंग्रेजी पढ़ाता हूं। लोग मुझे 'प्रोफेसर' कहते हैं और करीब सभी का विश्वास है कि मैं विद्वान हूं, बहुत कुछ जानता हूं। मेरे दुर्दैव से मैंने कुछ मराठी संतों की रचनायें पढ़ी हैं, भाषण भी देते आया हूं, तो यह गैर-विश्वास और गहरा हो गया है।

मेरे सौभाग्य से कुछ दस साल पहले मुझे कृष्ण जी (J. Krishnamurti) की पुस्तकें पढ़ने का अवसर मिला। उस आदमी ने मुझे पागल बना दिया। सारे सुन्दर भ्रमों को छीन लिया और एक नंगा (Naked) व्यक्तित्व बना दिया। पुराने सहारे बह गये और नये सहारे दिये नहीं—सभी सहारों से अलग कर दिया। एक दिन ऐसा आया कि मैं खुद को रोक न सका। एक दिन की 'कैजुअल लीव' लेकर बम्बई दौड़ गया। जे. जे. स्कूल ऑफ आर्ट में उनका एक भाषण सुना। दूसरे दिन मलबार हिल के बंगले में जाकर मिल आया। बहुत गहरे प्रेम से उन्होंने स्वागत किया और पूछा, 'Have you any problems to ask ?' मैंने कह दिया, ' No Sir, I have no problems, because I am convinced of what you say, viz everey problem contains its own Solution....., but sir, the transformation,—the total transformation of which you speak, does'nt come about and one feels profoundly sad' उन्होंने प्रेमभरी दृष्टि से देखा और कहा, ' it will come sir, it will come.'

फिर कुछ दिनों बाद आपकी पुस्तकें मिलीं, फिर वही घना आनंद बरसना शुरु हो गया। करीब-करीब आपके सभी ग्रंथ लाये और डूब गया। लाल पेन्सिल से under-line करते चला, जो अच्छा और सुन्दर लगा। और इससे पूरे ग्रंथ को हर एक लाइन अधोरेखांकित हो गई। पत्नी, मित्र हंसने लगे, ये कोई under-line करने का तरीका है ? आपने तो हर एक लाइन अधोरेखांकित कर दी ? मैं उत्तर भी क्या देता ? मैंने कहा—' पढ़ो और देखो। सिर्फ line को अधोरेखांकित कर सका, जो implied है, गृहीत है जो between the lines है, वह तो और भी गहरा है, अतीव सुन्दर है—वह दिखता नहीं इसलिये under-line, नहीं कर पाया, वरना और भी रंग भर जाता।

इस वर्ष के मार्च २९ या ३० को कुछ काम से बंबई आपसे मिलने आया था, आपकी तबियत ठीक नहीं थी। लेकिन कुछ चंद मिनिटों की भेंट हुई। आपसे बोलने को तो आपके सेक्रेटरी ने मना कर दिया ही था, और भी एक जिम्मेदारी डाल दी थी, ' अगर आप बात करने लगे तो मैं आपको रोकूं' लेकिन भेंट हुई, आनन्द हुआ। कुछ कारणवश Mt. Abu के शिविर में आने के लिये असमर्थ था। आपने कहा था, 'बाद में भी शिविर होंगे, तब आना।' आपके सेक्रेटरी ने मेरा नाम भी रजिस्टर में लिख लिया, लेकिन कुछ खबर नहीं मिली।

आपका कोई भी भाषण पढ़ते रहता हूं, उस अवसर भर (Duration में) आनन्द से अंतःकरण भर जाता है—आंख में आँसू भर आते हैं, मेरुदंड से कुछ अजीब सुखद संवेदनाएं होने लगती हैं'.....व्यक्तित्व निःशेष हो जाता है—रहती है सिर्फ एक awareness। यहां तक तो सब ठीक है, लेकिन यह duration समाप्त हो जाता है। और फिर उस स्पर्श से वंचित हो जाता हूं, फिर दुनियादारी से सब विकार दौड़ आते हैं और मेरे मन में घर बसा लेते हैं—उदास हो जाता हूं। Transformation नहीं हुआ, प्रभाव जरूर हुआ, लेकिन वह क्षणिक था—Temporary था, फिर से पत्नी पर क्रोध, बच्चों पर क्रोध.....और सब विकारों की पलटन सवार हो जाती है, लगता है पराभूत हो गये, गुलाम हो गये। फिर आपका ग्रंथ लेकर किसी होटल के कोने में बैठ जाता हूं। फिर आनन्द की लहरें आने लगती हैं, आंख में आंसू और एक विनम्र, निष्पाप, प्रेम भरा Attitude, एक प्रेम से

भीगी दृष्टि। लगता है, फिर खुद को पा गये, अब नहीं भूलेंगे। अब यह भान, यह awareness सदा रहेगी, इससे वंचित नहीं होंगे.....और फिर वही पुराना अहम्, Self सवार हो जाता है—फिर वही उदासी, खिन्नता छा जाती है—प्रतीत होता है Transformation नहीं हुआ।

यह अवस्था और कितने दिन चलेगी ? अब सहा नहीं जाता—अब न इधर का रहा न उधर का ! जो भी महत्वाकांक्षायें थी, सब मृत हो गईं। लोग कहते हैं, 'होशियार हो,Ph.D.करो Rs. 700–1100 का स्केल मिल जायगा।' कोई कहते हैं, 'तुम लेखक हो, तुमने एकांकी लिखे, नाटक लिखे, पुरस्कार पाया, तो और लिखो।' लेकिन कुछ लिख नहीं सकता, पढ़ भी नहीं सकता। कुछ पढ़ने का दिल हो जाय तो आपके ग्रंथों या कृष्ण जी के ग्रंथों की ओर हाथ चले जाते हैं। बाकी सब बचपने की बातें लगती हैं—उथली, Shallow प्रतीत होती हैं। **आपने और कृष्ण जी ने मुझे naked कर दिया—किसी तत्वज्ञान की चिंधी से खुद को ढांक भी नहीं सकता**, किसी चिंधी से ढाँकूं भी, तो भी सब दिख पड़ता है, किसी बेहोशी में डूब नहीं सकता—अकेला, उदास और निर्वस्त्र हो गया हूं। कुछ कहीं कमी पड़ रही है। Total transformation नहीं आता, यह तो सब असह्य है।

लगता है, 'यह अपने बस के बाहर है। कोई साधु, कोई औलिया मिले और सर पर हाथ रख दे और मिलन हो जाय परमात्मा से।' यह तो ऐसा हुआ है कि किसी प्रिय के बारे में खूब सुना, खूब पढ़ा पागल हो गये उसके लिये—ढूंढ़ा उसे गली–गली में, बद्री–केदार के पहाड़ों में—लेकिन वह नहीं मिला, नहीं दिखा, उसने कुछ भी खबर नहीं दी। शायद Intensity, तीव्रता कम है—शायद अभी उसके लायक, उसके योग्य नहीं हुए।

लेकिन यह सब कब होगा ? और कितनी राह देखना पड़ेगी ? यह अंधपना बेचैन कर देता है। आप ही एक धक्का दे दीजिए न, जिससे उस अमृतानुभव के सागर में डूब जाऊं। मेरी शक्ति कम पड़ रही है और एक प्रकार की थकावट (exhaustion) अनुभव में आती है। वापस जा नहीं सकता, जिसे ढूंढ़ रहा हूं, उसका स्पर्श नहीं होता। आप जान सकते हैं केवल आप ही जान सकते हैं। इसलिए यह आत्म–निवेदन आपसे किया। सिर्फ एक धक्का—ऐसा जोरदार कि डुबा दें, सब तृष्णा को बुझा दें इस धक्के के बिना अब प्रवास असंभव है।

तो कहिए, मैं कब आऊं ? आप आज्ञा दीजिये और मैं चला आऊंगा। न जाने आपको कितने पत्र आते होंगे, इस पर मैंने भी आपको कष्ट दिये, लेकिन और कोई दीखता नहीं कष्ट देने लायक। आप प्रेम से मुझे क्षमा करेंगे और आज्ञा करेंगे कि मैं कब मिलूं ? टेलीग्राम ही कीजिये न !

आपका–
प्रभाकर

प्रभाकर चांदेकर
२०-७-१९७१
१२ अभ्यंकर नगर
नागपुर (महाराष्ट्र)

एक साधक के अनुभव

यह पत्र नहीं आप–बीती है, अतः थोड़ी लम्बी है। मैं कोई ज्यादा पढ़ा–लिखा आदमी नहीं हूं। मेरे गांव के निकट एक आदमी रहते हैं, जिन्हें हम लोग मैनेजर साहब कहते हैं। उन्होंने मुझे तीन चार महीने पहले राम या ॐ पर ध्यान करने को बतलाया, रात में ११ बजे से दो या तीन बजे के बीच। राम पर ध्यान नहीं टिकता था, तो मैं वैसे ही ध्यान करने लगा। कुछ दिनों के बाद मस्तिष्क विचार शून्य होने लगा, तो पागल हो जाने के भय से ध्यान में बैठना छोड़ दिया। करीब दो महीने के बाद श्री अरविन्द की पुस्तक 'ध्यान और एकाग्रता' पढ़ने पर पता चला कि मन का नीरव होना ही ध्यान है। मैं फिर ध्यान में बैठने लगा। बैठने पर पांच सात मिनट में शरीर आगे की ओर झुकना शुरू कर देता था, तो मैं शरीर को सीधा कर देता और फिर सो जाता था। इसी बीच आपके प्रवचनों के कुछ संग्रह भी पढ़ गया।

दो सप्ताह बीते होंगे कि दो जुलाई को पूज्य दीदी उर्मिला जी की पुस्तक 'शांति की खोज' देखने को मिली, जिसमें आपने उन्हें मार्ग दर्शन कराया है। आपने उन्हें बतलाया था कि ध्यान के समय शरीर जिधर झुकता हो झुकने दें। शनिवार ३ जुलाई को करीब १० बजे रात में आपकी पुस्तक Vital Balance पढ़ रहा था तो मन नहीं लगा। फिर गाना सुनने लगा तो उसमें मन नहीं लगा। अतः बत्ती बुझाकर ध्यान में बैठ गया। थोड़ी देर में शरीर आगे झुकने लगा। मैंने शरीर को ढ़ीला छोड़ दिया, शरीर थोड़ी दूर तक झुक कर स्थिर हो गया, फिर लगा कि कोई शक्ति सिर में नीचे से धक्के मारकर शरीर को सीधा कर रही है। सीधा होकर शरीर पीछे झुकने

लगा और अन्त में शरीर लेट गया। लेटना था कि श्वास एकदम तेज हो गयी, थोड़ी देर के बाद शरीर उठकर उठ–बैठ करने लगा थक जाने पर फिर लेट गया और हर सांस के साथ 'मैं कौन हूं ? मैं कौन हूं ?' निकलने लगा। थोड़ी देर ऐसा होने पर फिर उठकर बैठ गया और पद्मासन लग गया, साथ ही ध्वनि निकलने लगी 'जो भी है सो ईश्वर है'। फिर लेट जाने पर अन्दर से आवाज आयी कि हाथ मुँह धोकर सो जाओ। मैं सम्मोहित–सा उठकर हाथ मुँह धो आया और लेट गया। लेटने पर लगा कि कोई कह रहा है तुम सो रहे हो, तुम सो रहे हो, तुम सो गये। लेकिन मैं जगा हुआ था, फिर मेरे मन में अनेक प्रश्न उठे, जिनका उत्तर भी मन में ही मिला लेकिन अनुभव हुआ कि कोई आमने सामने बैठकर बात कर रहा है। उनमें से कुछ प्रश्नोत्तर नीचे दे रहा हूं—

प्रश्न—मैं तो जगा हुआ हूं और आप कहते हैं कि मैं सो रहा हूं।

उत्तर—यही तो जाग्रतावस्था का सोना है। कृष्ण ऐसे ही सोते थे। बुद्ध ऐसे ही सोते थे। महावीर ऐसे ही सोते थे।

प्रश्न—यह क्या हो गया है ? मुझे बहुत डर लग रहा है और धबड़ाहट हो रही है।

उत्तर—जो हो रहा है शुभ है, कुन्डलिनी माता जाग्रत हो गयी हैं। कुन्डलिनी माता और प्रभु जब तुम्हारी सहायता कर रहे हैं तो डरने की कोई बात नहीं।

प्रश्न—गुरु किन्हें मानूं, मैनेजर साहब को या आचार्य रजनीश को।

उत्तर—मैनेजर गुरु हैं। रजनीश तो तुम्हारा भाई है।

फिर नींद आ गयी। दूसरे दिन भी सम्मोहन नहीं टूटा और उसी हालत में गाँव से पटना चला आया जहां मेरे पिताजी रहते हैं, जिन्होंने मेरी बुरी आदतों से तंग आकर मुझे घर से निकाल दिया था और मैं गांव में जाकर रहने लगा था। यहां आकर उनके पैरों पर गिरकर हंसा, फिर खूब रोया, लेकिन ऐसा लगा कि यह सब कोई करा रहा है और शरीर कर रहा है। दो दिन तक मन सम्मोहित रहा लेकिन कोई घटना नहीं हुई।

मंगलवार को करीब तीन बजे से ही शरीर फिर अनेकों काम करने लगा। **लेटकर, बैठकर हाथ की पैर की अनेकों मुद्रायें बनीं**। १ बजे रात्रि में सम्मोहन हटा तो एक गिलास पानी पीकर सो गया। दूसरे दिन बुधवार नित्य क्रिया करने के पूर्व ही करीब पौने छह बजे से फिर वैसी मुद्रायें बनने लगीं। **लेटकर, बैठकर शरीर के बहुत व्यायाम किए— घंटों बिछावन पर सिर रगड़ना पड़ा**। ऐसा लगता था, सिर बिछावन से चिपक गया है। उस **समय लगता था कि शरीर ये सारे कर्म कर रहा है और मैं तमाशा देख रहा हूं**। लेकिन रोकने की शक्ति नहीं थी, क्योंकि **सारे शरीर में बिजली भरी हुई थी**। करीब संध्या को जब शरीर बिलकुल थक गया तो अपने मुंह से 'मैं कौन हूं, मैं कौन हूं,' निकलने लगा। फिर उसके बाद 'जो भी है सो ईश्वर है' की ध्वनि निकलनी शुरू हुई, साथ ही अनेकों मुद्रायें भी बनती थीं। एकाध घंटा ऐसा होने पर **मुंह से 'प्रभु, प्रभु' निकलने लगा और शरीर मछली की तरह लोटने लगा। शरीर कुचले गये सांप की तरह छटपटाता था और** इधर दोनों हाथ भी चिपकाकर नाक बन्द कर लेता था जब तक दम न घुटने लगे। ऐसा घंटों हुआ, फिर लगता है नींद आ गयी। करीब पौने दस बजे नींद टूटी तो शरीर इतना थका और भूखा था कि उठने की शक्ति नहीं थी। किसी तरह उठकर खाना खाया और सो गया।

बृहस्पतिवार ठीक बीता। शुक्रवार को **नींद टूटते ही हाथ की मुद्रायें बननी शुरू हो गयीं और आंख में ऐसी रोशनी भर गयी** कि आंख खुलना मुश्किल हो गया। फिर परिवार के सभी सदस्यों और नौकर के पांव पर, आँख पर हाथ रगड़ने पर आँख खोलने लायक हुआ। इसके बाद सभी काम बुधवार की तरह हुए। फिर करीब दो घंटे तक पूरी शान्ति रही। करीब पाँच बजे संध्या उठकर नहा-धोकर एकदम ताजा हो गया। उसके बाद कुछ नहीं हुआ है और १२ जुलाई से मैं अपने काम पर भी जाने लगा।

प्रेषक—
श्री कपिल देवसिंह,
B/2 बिहार स्टेट विद्युत बोर्ड कालोनी,
न्यू पुनाई चक, पटना (बिहार)
दिनांक १५ जुलाई १९७१

नव–संन्यास एक अनुभव

स्वामी आनंद घन,
अहमदाबाद

मेरे भगवन्

जिन्दगी में पतवारें खोल दी हैं—लंगर तोड़ दिया है, जीवन की नाव बेसहारे चल रही है—उसे मैं अब सिर्फ देख रहा हूं। उसमें भी क्या आनन्द है—क्या मजा है—**क्या मस्ती है—वह तो जामे हक पीने वाला और आप जो पिलाने वाले हैं, वे ही जानें।**

यह शरीर अहमदाबाद म्युनीसिपल कार्पोरेशन में सेक्शनल ऑफीसर के नाते काम कर रहा है। इस शरीर के ऊपर गेरुआ वस्त्र हैं, गले में माला भी—बिलकुल अवधूती वेश है, इसे देखने वाले चकाचौंध हो गये हैं। कितनों को इसे देखकर आनन्द भी आ रहा है, लेकिन यह संन्यासी वेश—स्वतंत्रता का जो सूचक है—उस 'डेप्युटी सिटी इंजीनियर' को खुद की जलन के कारण पसंद नहीं आया। उसने कल शाम को इस सेक्शनल आफीसर से कहा—'तुम्हारे इस गेरुआ रंग से कोई निस्बत नहीं, लेकिन लुंगी पहनना इन्जीनियर के लिये योग्य नहीं है। मैंने कहा, मुझे ठीक लगता है, सो पहनता हूं। उन्होंने कहा, सभी जगह इन्जीनियर पेन्ट पहनते हैं, तुम पेन्ट पहन सकते हो, लुंगी नहीं। मैंने कहा, म्यु० कार्पोरेशन में कोई यूनीफार्म नहीं, कोई कम्पलशन नहीं। वे यह जवाब सुनकर झिझक गये। क्योंकि वह ऐसे आफीसर हैं, जिसके सामने कोई बोलने की हिम्मत नहीं कर सकता—सब गूंगे हो जाते हैं। वे जो कहें, सब हां, हां! उसने कहा, अगर कम्पलशन चाहिये, तो ऐसी बहुत चीजें हैं जो मैं तुम्हारे पर लगा सकता हूं। ऐसा सुनते ही 'इस' राम ने भीतर देखा। भीतर सिकन्दर और संन्यासी दिखाई पड़े। **सिकन्दर तलवार के बल पर संन्यासी को यूनान न ले जा सका तो यह डिपुटी सिटी इंजीनियर इस आनन्द घन के शरीर से लुंगी ले जा सकेगा क्या?** अब तो इस इन्जीनियर को भी आह्वान है, ले जाय लुंगी इस शरीर पर से! वह भी हम देखेंगे। यह भी आचार्य रजनीश का संन्यासी है, कैसे डिगेगा? **अब तो असुरक्षा भी मंजूर है।**

० ० ०

अब तो मनमें जो भी सवाल आते हैं और उसका जवाब जो आप देते हैं वहां, वे सुनाई देते हैं यहां। बस आनन्द में हूं, आनन्द ही हूं, आनन्द के सिवा कुछ नहीं। जो भी हो मंजूर है! आपके—

आनन्द घन के प्रणाम

क्या है मार्ग ?---ज्ञान भक्ति या कर्म ?

कर्म-मार्ग का भ्रम

(राजकोट में दिया गया भगवान श्री का प्रवचन)

मेरे प्रिय आत्मन्,

कर्म के योग पर आज थोड़ी बात करनी है। बड़ी से बडी भ्रांति कर्म के साथ जुड़ी है और इस भ्रांति को जोड़ना बहुत स्वाभाविक भी है। मनुष्य के व्यक्तित्व को दो आयामों में बांटा जा सकता है। एक आयाम है, Being का, होने का–आत्मा का और दूसरा आयाम है, Doing का, कर्म का, करने का। एक तो मैं हूं और एक मेरा जगत है, जहां मैं कुछ करता हूं। लेकिन ध्यान रहे करने के पहले होना जरूरी है और ये भी ख्याल में ले लेना आवश्यक है कि सब करना होने से निकलता है। कर लेने से होना नहीं निकलता, करने से पहले मेरा होना जरूरी है, लेकिन मेरे होने के पहले करना जरूरी नहीं है। **कर्म जो है वो परिधि है, अस्तित्व जो है वो केन्द्र है। अस्तित्व आत्मा है। कर्म हमारा जगत के साथ सम्बन्ध है।**

ऐसा समझें, एक सागर पर बहुत लहरें हैं। सतह पर बहुत हलचल है। लहरें उठती हैं गिरती हैं। ये लहरों का जो फैला हुआ जाल है ये कर्म का जाल है। सागर सतह पर बड़ा कर्मरत है लेकिन नीचे–उतरें तो सन्नाटा है। और नीचे जायें तो बिल्कुल सन्नाटा है। और नीचे जायें तो कोई लहर नहीं, कोई हलचल नहीं। गहरी चुप्पी है। सागर की लहरों के नीचे सागर का होना है। होना गहरे में है। कर्म का जाल, लहरों का जाल ऊपर परिधि पर है। प्रत्येक व्यक्ति की परिधि पर, Circumference पर, कर्म का जाल है और प्रत्येक व्यक्ति के केन्द्र पर होने का सागर है। लेकिन जब हम किसी व्यक्ति को देखते हैं तो उसका होना दिखायी नहीं पड़ता, उसका करना ही दिखायी पड़ता है। होना दिखाई पड़ भी नहीं सकता। सागर के पास जब आप जाते हैं तो आप कहते हैं कि सागर दिखायी पड़ रहा है। सागर दिखायी नहीं पड़ता, दिखायी पड़ती हैं सिर्फ लहरें। सागर आपको कभी दिखायी नहीं पड़ा होगा। लहरें ही दिखायी पड़ीं। लहरें सागर नहीं हैं क्योंकि कोई

लहर सागर के बिना अस्तित्व में नहीं हो सकती। अगर हम लहर को सागर से अलग बचाना चाहें तो लहर मिट जायगी, लेकिन सागर बिना लहर के हो सकता है। सागर बिना लहर के मर नहीं जायेगा। इसलिए मूल सागर है, लहर Bi-product है। लहर उप-उत्पत्तिहै। इसलिए लहर नहीं हो सकती सागर के बिना। सागर बिना लहर के हो सकता है। कर्म नहीं हो सकता बिना आत्मा के, लेकिन आत्मा बिना कर्म के हो सकती है। अगर मैं नहीं हूं तो मेरे सब कर्म खो जायेंगे, लेकिन मेरे सब कर्म खो जायें तो भी मैं नहीं खो जाता हूं।

इस बुनियादी भेद को सबसे पहले समझ लेना जरूरी है लेकिन फिर भी जो मैं हूं वो आपको दिखायी नहीं पड़ता, आप जो हैं वो मुझे दिखायी नहीं पड़ते। आप जो करते हैं वही दिखायी पड़ता है। मैं जो करता हूं वही दिखायी पड़ता है। करना दिखायी पड़ता है, होना छिपा है। करना दृश्य होना अदृश्य है। करना ज्ञात है, होना अज्ञात है। हमारे भीतर दो दिशायें हैं, एक करने की, दृश्य की—लहरों की जो दूसरों को दिखायी पड़ सकेगा, ज्ञात हो सकेगा और एक होने की जो किसी को भी ज्ञात नहीं हो सकेगा, किसी को भी दिखायी नहीं पड़ सकेगा, जो सदा छिपा है, सदा छिपा है गहरे में, The hidden, वो सदा पीछे की बात है— गूढ़ ! ये दो हमारी दिशायें हैं—होने की—अस्तित्व की। इन दोनों दिशाओं में कौन मूल है इसे अगर हम न पहचान पायें तो बहुत भूल हो जायेगी क्योंकि ये बड़े नियम की बात है कि गौण के द्वारा मूल को नहीं पाया जा सकता। मूल के द्वारा गौण को पाया जा सकता है। जैसे हम गेहूं को बो देते हैं, फिर गेहूं की फसल आती है और गेहूं के साथ भूसा भी आता है। भूसा मूल नहीं है, परिधि है, बाहर की खोल है। गेहूं मूल है—भीतर छिपा हुआ हिस्सा है। गेहूं के साथ भूसा पैदा होता है, लेकिन आप भूसा बो दें तो गेहूं पैदा नहीं होगा। गेहूं बो दें, भूसा आ जायगा। अपने आप आ जायेगा। लेकिन भूसा बो दें तो गेहूं तो आयेगा ही नहीं, भूसा भी नष्ट हो जायेगा। मनुष्य का कर्म जो है वो भूसे की तरह है और मनुष्य का होना जो है वह गेहूं की तरह है। अगर भीतर होता है तो कर्म बदल जायेगा। जैसा होना होगा वैसा कर्म हो जायेगा लेकिन बाहर से कर्म बदलना है तो वैसा होना नहीं बदल जाता।

मेरा जोर होने पर है, Being पर लेकिन कर्मयोग का जोर कर्म पर है, होने पर नहीं—Being पर नहीं। Doing पर है। कर्मयोग कहता है

करो—ऐसा करो। ऐसा करोगे तो ऐसे हो जाओगे। गलत है ये बात—ऐसे हो जाओगे तो ऐसा कर्म हो सकता है, लेकिन ऐसा करोगे तो ऐसे नहीं हो जाओगे। लेकिन जो भी दिखायी पड़ता है, कर्म है, इसलिये भ्रांति हो जाती है। कोई महावीर हमारे बीच से निकलें तो दिखायी पड़ेगा कि महावीर नग्न हो गये। कर्म है, वस्त्र पहनना एक कर्म है। नग्न हो जाना एक कर्म है। महावीर नग्न हो गये ऐसा हमें दिखायी पड़ेगा और फिर दिखायी पड़ेगी महावीर की शांति और महावीर का आनन्द और उनके चारों तरफ रहस्य की बहती हुई हवायें और उनकी आंखों में गहराई। और वो सब दिखायी पड़ेगा और दिखायी पड़ेगा कर्म कि महावीर नग्न हो गये। हमारे मन में भी ख्याल हो सकता है कि अगर मैं भी नग्न हो जाऊं तो जो महावीर को मिला था वो मुझे भी मिल जायगा।

हम भूसे से गेहूं की तरफ चले। पकड़ लिया हमने कर्म को। महावीर क्या खाते हैं, क्या पीते हैं, ये कर्म है। देखा कि क्या खाते हैं? क्या पीते हैं? कब खाते हैं? कैसे खाते हैं? कब नहीं खाते? कैसे चलते हैं? कैसे उठते हैं? ये कर्म हैं। कैसे बोलते हैं? कैसे नहीं बोलते? ये सब हमने देखा। हमने परिधि को पूरा जांच लिया। हमने कहा कि ये परिधि हम भी पूरी कर लें तो जो इस आदमी के भीतर घटा है, वो हमारे भीतर भी घट जायेगा। तो हम भी उठने लगें—ब्रह्म मुहूर्त में। हो जायें नग्न, ये खायें, ये न खायें, ऐसे चलें, ऐसे ना चलें। ये हम सब पूरा कर लें। ठीक महावीर जितना करते थे उतना कर लें। पूरा, इंच भर भी कमी न रह जाये। तो भी भीतर वो पैदा नहीं होगा जो महावीर के भीतर पैदा हुआ, क्योंकि हम उल्टे चल पड़े। घटना को हमने उल्टा देखा। महावीर के भीतर कुछ पहले हुआ है, तब फिर बाहर फैला है। हमने बाहर से पकड़ा और भीतर चले। भीतर से बाहर की तरफ आ सकते हैं, बाहर से भीतर की तरफ नहीं जा सकते। बाहर भूसा है, भीतर गेहूं है। महावीर की आंखों में जो शांति दिखायी पड़ती है, महावीर के अस्तित्व में जो निर्मलता दिखायी पड़ती है, उनके होने में जो एक Innocence, एक निर्दोष साधक है, वो पहले है। क्योंकि भीतर एक निर्दोष होने का जन्म हो गया है, इसलिये बाहर वे नग्न हो सके। भीतर की निर्दोषिता बाहर की नग्नता बन सकी। लेकिन बाहर की नग्नता भीतर की निर्दोषिता नहीं बन सकती।

इसे जितना हम ठीक से समझ लें उतना ही सत्य की दिशा में गति करना आसान हो जाये। बड़े से बड़े उलझाव इससे पैदा होते हैं। लोग मेरे

पास आते हैं वो कहते हैं हम क्या करें ? जो कभी भी नहीं पूछते कि हम क्या हो जायें ? वे पूछते हैं—हम क्या करें ?

मैं भी एक गांव में ठहरा था। गांव का कलेक्टर मुझसे मिलने आया और उसने कहा अगर मैं भी आप जैसी चादर पहन लूं तो कुछ लाभ होगा ? कुछ भी लाभ नहीं होगा। चादर को थोड़ा बहुत नुकसान हो जायेगा। वो कहने लगा– नहीं आप मजाक करते हैं। मुझे ठीक से बताओ। आप उठते कब हैं ? आप खाते क्या हैं ? मैं भी वैसा ही करूं। जो आदमी जिज्ञासु है खोजता है। गलत छोर से खोजता है लेकिन हजारों साल से मनुष्य जाति गलत छोर से खोज रही। वो आदमी का कसूर नहीं और स्वाभाविक ही ये भूल है। ये इसलिये स्वाभाविक है कि कर्म दिखायी पड़ता है, होना दिखायी नहीं पड़ता। करे भी क्या कोई। जो दिखायी पड़ता है उसी से चलने की बात ख्याल में आती है। जो नहीं दिखायी पड़ता वहां से चलें कैसे ? लेकिन मैं आपको कहना चाहता हूं कि अगर ये हमारी समझ में आ जाय कि जो दिखायी पड़ता है वो तरंगें हैं—बाहर की और भीतर सागर है जहां तरंग ही नहीं, निस्तरंग है। वहां से ही सारी गति है, वहां से ही सारा होना है। हमारा सारा व्यक्तित्व भीतर से फैलता हुआ है। हम निरंतर भीतर से फैलते चले आते हैं। हम एक छोटा सा बीज बो दें फिर वो अंकुरित होता है। बड़ा वृक्ष होता चला जाता है। एक छोटा सा बीज भीतर से बाहर की तरफ फैलता है, फैलता चला जाता है। मां के पेट में एक छोटा–सा अणु आता है जिसे आंख से देखा नहीं जा सकता। फिर वो अणु फैलता है, फैलता है और एक व्यक्ति निर्मित हो जाता है। सब भीतर से बाहर की तरफ फैल जाता है। अभी वैज्ञानिकों ने एक नवीनतम खोज की है जो बड़ी महत्वपूर्ण है। वो है Expanding Universe। पहले हम सोचते थे जगत जैसा है वैसा ही है, वही है। ठहरा हुआ है। लेकिन नवीनतम अनुभव ने बड़ी हैरानी कर दी। जगत फैल रहा है जैसे कि कोई गुब्बारे में हवा भर रहा हो और गुब्बारा भरा जाता है। फैलता जा रहा है, फैलता जा रहा है। जगत फैल रहा है और प्रतिपल करोड़ों मील की रफ्तार से तारे दूर भागे जा रहे हैं—परिधि की तरह फैलते जाते हैं, केन्द्र से हटते जा रहे हैं।

जगत जो है, Expanding है। आज से दो करोड़ वर्ष पहले जगत छोटा था। तारे करीब–करीब थे। आज जगत बड़ा है, कल और बड़ा होगा

और अंतहीन फैलाव है। हमारे पास एक शब्द है ब्रह्म। ब्रह्म बहुत कीमती शब्द है और आज नहीं कल विज्ञान को इस शब्द को स्वीकार कर लेना होगा कि ब्रह्म का मतलब होता है— The Expanding। जो फैल रहा है, फैल रहा है, फैलता ही जा रहा है। ब्रह्म का मतलब होता है जो विस्तीर्ण हो रहा है, जो फैलता जा रहा है। जिसके फैलाव का कोई अन्त नहीं है। जो कहीं रुकेगा नहीं, जो फैलता ही चला जायेगा। इस बात को समझा जा सकता है कि कभी सारा जगत, जैसे एक छोटा–सा बच्चा मां के पेट में एक अणु होता है, और एक छोटा सा बीज, एक–एक बड़े वृक्ष का एक जरा–सा बीज होता है। आश्चर्य नहीं निश्चित ही ऐसा हुआ होगा।' कभी यह सारा, इतना बड़ा जगत एक छोटा–सा बीज रहा होगा। फैलता गया। आज इतना बड़ा है, कल और बड़ा, कल और बड़ा। भीतर से बाहर की तरफ फैलाव है। भीतर से शक्ति के स्त्रोत हैं वे फूटते जाते हैं और बाहर की तरफ फैलते जाते हैं लेकिन मनुष्य के जीवन में एक भूल हो जाती है और वह भूल यह हो जाती है, हम बाहर को देखते हैं और सोचते हैं कि बाहर से भीतर की तरफ चलें।

कर्मयोग बाहर से भीतर की तरफ चलने की भ्रांति है। कर्मयोग की मान्यतायें हैं कि कुछ करो। करोगे तो हो सकोगे। कर्मयोगी कहता है कि बैठ मत जाना, विश्राम मत करना। बैठ जाओगे, विश्राम करोगे तो पहुंच न सकोगे। कुछ करो और ठीक करो क्योंकि गलत किया तो भटक जाओगे। इसलिए कर्मयोग गहरे में शुभ और अशुभ का चुनाव है—एक Choice है। ये ठीक है, ये गलत है। गलत को छोड़ो और ठीक को करो। गलत को छोड़ते जाओ और ठीक को करते जाओ, एक दिन ऐसा आयेगा कि गलत छूट जायेगा और ठीक ही ठीक शेष रह जायेगा। जिस दिन ठीक ही ठीक शेष रह जायेगा, उस दिन परमात्मा उपलब्ध हो जायेगा। ऐसा कर्मयोग मानता है।

ये मानना बिलकुल ही गलत है। बिलकुल ही गलत इसलिए है कि इसमें बहुत से Implications हैं, बहुत सी छिपी हुई बातें हैं। वो खोल के देख लेनी चाहिये। पहली बात तो ये है कि क्या है शुभ और क्या है अशुभ ? जब तक किसी ने स्वयं को नहीं जाना तब तक वो ये जान ही नहीं सकता कि क्या है शुभ और क्या है अशुभ ? असंभव है जानना शुभ क्या है? किस चीज को ठीक कहें ? महवीर कहते हैं कि चींटी न मर जाय। चींटी

मर गयी तो बहुत अशुभ हो जायगा। कृष्ण अर्जुन से कहते हैं बेफ्रिक्री से मार क्योंकि कोई मरता ही नहीं। तू मारेगा तो भी कोई मरने वाला नहीं। क्या है शुभ ? कृष्ण अर्जुन से कहते हैं मार—बेफ्रिक्री से मार। कोई चिन्ता ही मत कर, क्योंकि कभी कोई मरता ही नहीं। आत्मा अमर है। तू तलवार चला। कुछ कटता ही नहीं है। शस्त्र से कुछ कटता ही नहीं है। तू काट, तू भ्रम छोड़ दे कि कोई मरता है। कोई मरता ही नहीं। आत्मा अमर है। महावीर कहते हैं फूंक के पैर रखना, चींटी न दब जाये, हिंसा न हो जाये, अन्यथा पाप हो जायगा। क्या है शुभ ? महावीर कहते हैं वो शुभ है कि कृष्ण कहते हैं वो शुभ है ? वो कह रहे हैं काटो। महाभारत शायद बच भी जाता, अर्जुन अगर भाग जाता और संन्यासी हो जाता। होने की स्थिति पैदा हो गयी। भागने की तैयारी पूरी थी लेकिन कृष्ण ने कहा कहां भागकर जायेगा ? कौन है शुभ ? कौन है अशुभ ? नहीं, कर्म की परिधि पर तय ही नहीं किया जा सकता, लेकिन आप कहेंगे कि अगर आत्मा की परिधि पर महावीर पहुंच गये और कृष्ण भी पहुंच गये तो फिर ये फर्क क्यों है ? अगर वे आत्मा में पहुंच गये, होने में पहुंच गये तो फिर ये फर्क क्यों है ? जिस दिन आप पहुंचेंगे तब आप पायेंगे, फर्क नहीं है। वे दोनों एक ही बात को दो तरफ से कह रहे हैं।

महावीर कहते हैं पैर फूंक के रख कि चींटी न दब जाये। महावीर भी जानते हैं कि कुछ नहीं मरेगा, चींटी भी नहीं मरेगी। कुछ मरने वाला नहीं है। आत्मा अमर है, इसे वे भी जानते हैं। फिर वे कहते हैं मार मत। ये क्यों कहते हैं ? वे इसलिए कहते हैं कि मरेगा तो कुछ भी नहीं लेकिन तेरा ये ख्याल कि मैंने मारा, वो बहुत कठिनाई में डाल देगा। मरेगा तो कुछ भी नहीं। सवाल मरने का है ही नहीं। सवाल तेरे ख्याल का है कि मैंने मार डाला। ये ख्याल तुझे दिक्कत में डाल देगा। तुझे तो पता नहीं कि कुछ भी नहीं मरेगा। वे एक छोर से बात कर रहे हैं। वे उन्हीं लोगों से बात कर रहे

हैं जो मारने में उत्सुक हो गया हो। महावीर उनसे बात कर रहे हैं जो मारने में उत्सुक हो गया हो। महावीर उनसे बात कर रहे हैं जो मारने में उत्सुक हैं, जो चाहते हैं कि कोई समझा दे कि कुछ भी नहीं मरता तो अच्छी तरह मारें। महावीर उनसे बोल रहे हैं जो मारने में उत्सुक हैं। मरेगा कुछ भी नहीं लेकिन तूने मारा ये ख्याल तेरे लिए उपद्रव का कारण बन जायेगा। कृष्ण बिलकुल दूसरे आदमी से बात कर रहे हैं। वो उस आदमी से बात कर रहे हैं जो न मारने में उत्सुक हो गया है। वो कहता है मैं न मारूंगा। वो क्यों उत्सुक हो गया है ? वो कहता है मारने से पाप लग जायगा। महावीर जिसको समझा रहे हैं उसका गलत ख्याल ये है कि मैंने मारा, मैं मार रहा हूं, ये उसका गलत ख्याल है। अर्जुन का गलत ख्याल ये है कि कोई मर जायेगा तो मुझे पाप लग जायेगा। उसका ये ख्याल नहीं कि मेरे मारने से पाप लग जायेगा, उसका ख्याल है कोई मर जायेगा तो मुझे पाप लग जायेगा। कृष्ण उसे कहता है कोई मरता ही नहीं, तू बेफिक्री से मार। ये दोनों आदमी एक ही बात कहते हैं। ये दोनों अलग बातें नहीं कहते, लेकिन परिधि पर देखने से ये बातें इतनी अलग हैं जितनी हो सकती हैं। इनके बीच कोई मेल नहीं पड़ सकता।

असल में अगर हम एक बिंदु रखें और बिंदु के ऊपर परकाल रखके एक वृत्त खींचें, एक सर्कल बनायें, सर्कल पर पचास बिंदु बनाकर बीच के बिंदु की तरफ रेखायें खींचे, तो परिधि पर दो रेखाओं में फासला होगा और जैसे-जैसे केन्द्र की तरफ चलने लगें तो फासला कम होगा। और दो रेखायें जबकि परिधि पर बहुत दूर–दूर थीं, जब केन्द्र पर आयेंगी तो एक ही बिन्दु पर खड़ी हो जायेंगी। जो लोग Being पर पहुंचे हैं, जिन लोगों ने आत्मा को जाना हो वहां कोई फर्क नहीं रह जाता लेकिन परिधि पर बहुत फर्क है, क्योंकि सारे धर्म परिधि को देखकर बने हैं, इसलिए धर्मों में फर्क है। अगर किसी दिन आत्मा को देखकर धर्म का जन्म होगा तो दुनिया में एक ही धर्म हो सकता है, बहुत धर्म नहीं हो सकते। लेकिन मुहम्मद की परिधि अलग है, महावीर की परिधि अलग है, कृष्ण की परिधि अलग है। होगी ही। हर लहर अलग होगी। एक ही सागर पर उठने वाली भी दो लहरें एक जैसी नहीं होंगी। सब लहरें अलग होंगी। लहरें अलग होंगी ही। लेकिन लहरों के नीचे एक ही सागर है और वहां हमारा ध्यान ही नहीं जाता। फिर हम लहरों को पकड़ के चलना शुरू करते हैं। कोई महावीर का आचरण देखकर चलना शुरू

करते हैं तो जैन हो गया। कोई बुद्ध का आचरण देखके चलता है तो बुद्ध हो गया। कोई कृष्ण का आचरण देख के चलता है तो हिंदू हो गया। कोई जीजस का आचरण देखकर चलता है तो ईसाई हो गया। सब आचरण को देखने वाले लोगों के बनाये हुए धर्म हैं।

सारी दुनिया में कर्मवाद है। कर्म को देखकर हम चल रहे हैं, इसीलिये इतना उपद्रव है। शुभ और अशुभ का निर्णय कैसे करियेगा? कैसे जानियेगा कि क्या शुभ है? और क्या अशुभ है? नहीं जान सकते। जिसने अभी अपने की भी नहीं जाना, वो नहीं जान सकता कि शुभ क्या है? अशुभ क्या है? लेकिन कर्मयोग कहता है कि शुभ और अशुभ को देखकर चलो। कौन तय करेगा? कैसे तय करियेगा कि क्या शुभ और क्या अशुभ।

कबीर के घर बहुत लोग इकट्ठे होते और जब लोग जाने लगते, सुबह भजन-कीर्तन समाप्त होता, मिलना-जुलना बन्द होता तो कबीर कहते, भोजन करते जायें। कबीर का लड़का परेशान हो गया क्योंकि कहां से लाये इतना भोजन? कभी दो सौ लोग इकट्ठे होते, कभी पांच सौ लोग इकट्ठे होते। इन सबको हम रोज-रोज भोजन हम कैसे करायें? कबीर से उसने बहुत बार कहा कि अब कल से कभी मत कहना लोगों से कि भोजन कर लो, क्योंकि मैं कहां से लाऊंगा इतना? ये कैसे इन्तजाम करूं? हम गरीब आदमी हैं, आप भूल क्यों जाते हैं? कबीर बार-बार भूल जाते, क्योंकि जिसको भीतर की सम्पत्ति दिख गई हो, उसको गरीबी का ख्याल नहीं रह जाता वो रोज भूल जाता है। बेटा रोज सांझ गरदन पकड़ लेता है कि तुम आदमी कैसे हो? हम गरीब आदमी हैं, हम भूखे मर रहे हैं। हम कहां से लोगों को खिलायें? कर्ज हुआ जाता है। लोगों से मांग-मांग के परेशान हो गये। अब गांव में कोई देने को भी तैयार नहीं। सुबह जब लोग आते तो कबीर कहते कहां चले? भोजन तो करते जाओ। वो जिसको भीतर की सम्पत्ति दिख गयी हो उसको बाहर की दरिद्रता को याद रखना मुश्किल हो जाता। जिसको भीतर की सम्पदा नहीं मिली उसको बाहर की कितनी ही संपदा मिल जाय, उससे दरिद्रता नहीं मिटती। वो भीतर का दरिद्र कह देता कि अभी कुछ नहीं हैं, अभी कुछ नहीं है, अभी कुछ मिला ही क्या है? अभी तो और मिल जाय। वो भीतर आदमी दरिद्र बना रहा है। बाहर की संपत्ति दरिद्रता नहीं मिटा पाती इसलिए अक्सर ऐसा

होता है, जितनी संपत्ति उतना दरिद्र आदमी, उतना भीतर दीन-हीन। आखिर एक दिन कबीर के लड़के ने कबीर से कहा, अब बहुत हो गया, अब अंतिम, जिसको 'अल्टिमैटम' कहते हैं, आखिरी निर्णय हो जाना चाहिये, नहीं तो कल से इस घर में मैं नहीं रहूंगा। क्या मैं चोरी करने लगूं ? उसने तो क्रोध में कहा था कि कबीर को कोई बुद्धि आ जाय, लेकिन बुद्धि के नीचे जो रहते हैं, वो भी निर्बुद्धि होते हैं और बुद्धि के ऊपर जो चले जाते हैं वो भी निर्बुद्धि हो जाते हैं। दोनों में बड़ा फर्क होता है लेकिन करीब-करीब एक जैसा होता है। एकदम से पहचानना मुश्किल है। कबीर ने कहा मूर्ख, तुझे पहले क्यों न सूझा ? अरे चोरी करनी थी तो मुझे इतने दिन से परेशान क्यों करता है ?—कर ले। लड़का तो बहुत चौंका। उसने कहा आप ये कह रहे हैं कि चोरी कर लूं ? आप ये कह रहे हैं ? शुभ-अशुभ का कोई ख्याल नहीं ? चोरी अशुभ है। कबीर ने कहा, चोरी अशुभ है ! वो आंख बंद करके कुछ सोचने लगा। कुछ समझ में नहीं आता। लड़के ने कहा कि परीक्षा पूरी ही कर लेनी चाहिये। उसने कहा उठिये फिर, मैं ही क्यों चोरी करूं, आप भी साथ चलिये। कबीर ने कहा, चलता हूं लेकिन देख ज्यादा सामान मैं नहीं उठा पाऊंगा, बुड्ढा आदमी हूं। कबीर पीछे, बेटा आगे। वे चोरी करने गये, लड़के ने भी बड़ी हिम्मत की। कमाल, उनका लड़का बहुत हिम्मतवर था। उसने कहा, आखिरी क्षण तक देख लेना चाहिये, ये आदमी क्या बात कर रहा है ! जिसको शुभ-अशुभ का भी बोध नहीं है। सुरंग लगाई, दिवाल तोड़ डाली। कबीर से कहा, क्या इरादा है ? कबीर ने कहा घुसो। उसने सोचा कि अब चोरी करनी ही पड़ेगी। लड़का भीतर घुस गया। एक बोरा गेहूं खींचकर लाया, कबीर से कहा सहायता करिये। कबीर ने सहायता की। लड़के ने कहा, अब क्या इरादा है ? ले चल घर ! कबीर ने कहा, इतनी मेहनत किसलिए की ? लेकिन घर के लोगों को बता आये ना ? उस लड़के ने सिर ठोंक लिया। उसने कहा, ये चोरी कर रहे हैं कोई घर के लोगों को बताने की बात है ? कबीर ने कहा, नहीं, ये ठीक नहीं हुआ। जरा घर के लोगों को बताना चाहिये। उस लड़के ने कहा, तो ये कैसी चोरी है ? तुम्हें समझ में नहीं आता कि चोरी बुरी चीज है ? कबीर ने कहा कि अब मैं सोचता हूं, जब तुम नहीं कह आये घर के लोगों से, तो कुछ गड़बड़ मालूम पड़ती है। लेकिन मुझसे इसलिये भूल हो गई कि बहुत दिनों से मुझे अपने–पराये का भेद नहीं रहा।

मेरी समझ में ही नहीं आये कि चोरी किसकी ? कौन करेगा ? और किसकी होगी ? सभी 'उसका' है। हम भी 'उसके' हैं, वो भी 'उसके' हैं, सामान भी उसका है। सब परमात्मा का है। नहीं, नहीं लेकिन खबर करते आओ। खबर तो कर दो, क्योंकि वो विचारे सुबह खोजें घर में और बोरा न मिले तो तकलीफ में पड़ेंगे, कहां खोजें ? उस लड़के ने कहा, हो गई चोरी ! वापस चलिये। ऐसे चोरी नहीं होती। अगर खबर ही करनी है तो घर वापिस चलिये। ये जो कबीर है वो ये कह रहा है कि सब 'उसका' है। कैसी चोरी ? चोरी के लिये अपने-पराये का भेद होना तो जरूरी है। संपत्ति किसकी है ? मेरी नहीं है—जिसको ये बोध है उसको ये भी बोध होगा कि ये संपत्ति मेरी है। जिसको ये बोध होगा कि किसी की चोरी न करूं, उसको ये भी बोध होगा कि मेरी कोई न कर ले। लेकिन एक जगह है जहां संपत्ति किसी की नहीं रही, जहां हम ही न रह गये। जहां सब 'उसी का' रह गया, वह क्या है ? कैसे तय करियेगा ? शुभ क्या है ? अशुभ क्या है ?

शुभ और अशुभ का निर्णय परिधि पर नहीं हो सकता, गहरे में होगा। मैं मानता हूं कि कबीर का बेटा जब कह रहा था कि चोरी अशुभ है, तब वो इसलिये कह रहा था कि संपत्ति की मालकियत को मानता था। तभी अहंकार जिंदा था और अहंकार अशुभ है, चोरी अशुभ नहीं। अहंकार की वजह से चोरी अशुभ मालूम पड़ेगी और कबीर का अहंकार ही खो गया। उसको पता ही नहीं चलता कि कौन किसका है ? क्या कौन है ? ये आदमी अशुभ है ? क्या आप कहेंगे कि कबीर का चोरी करने जाना अशुभ था ? मैं नहीं कह सकता। मेरे लिये कहना मुश्किल है क्योंकि कबीर चोरी करने गया ही नहीं। क्योंकि चोरी को तो तभी जाया जा सकता है कि संपत्ति किसी की हो और अहंकार हो, तो हमने जगत को बांटा है। कबीर चोरी करने गया ही नहीं। कबीर किसी दूसरी दिशा में यात्रा कर रहा है। बेटा किसी और दिशा में यात्रा कर रहा है। वे दोनों साथ गये ही नहीं। साथ दिखाई पड़े। कर्म की दुनिया में इसलिये दिक्कत हो जाती है। वो साथ गये ही नहीं। वो कहीं और जा रहा था, वो भगवान के घर जा रहा था। जैसा ये घर है वैसा वो घर है, उधर से उठा लाओ लेकिन, घर में जो लोग रहते हैं, उनको खबर कर आओ कि हम चोरी करके जाते हैं, ये सामान उठा रहे हैं। कबीर चोरी करने गया ही नहीं सिर्फ बेटा ही चोरी करने गया और बेटे को शुभ-अशुभ

का बोध है और कबीर को उसका बोध ही नहीं । परिधि पर जो निर्णय करेंगे, कैसे निर्णय करियेगा ? अगर हम सारे जगत में नीति के शुभ–अशुभ के भेद देखें तो बहुत हैरान हो जायेंगे । जो यहां शुभ है, वो पचास, सौ मील बाद में अशुभ हो सकता है । जो पचास, सौ मील दूर अशुभ है वो यहां शुभ हो सकता है ।

मेरे एक प्रोफेसर मित्र, पेशावर में थे । एक दिन वो मुझसे बात करते थे । उन्होंने कहा कि तुम जो कहते हो शायद एक घटना मेरे जीवन में घटी, उससे तुम्हारी बात मुझे ठीक लगती है । मैं पेशावर में था और मेरे पास पहली दफे एक पख्तून लड़का ग्रेजुएट हुआ । मैंने ही मेहनत करके उस पख्तून को पढ़ाया जो पख्तूनों में पहला ग्रेजुएट था, पहला ही स्नातक था । थर्ड क्लास में बड़ी मुश्किल से पास हुआ, लेकिन पख्तूनों में बड़ी खुशी फैल गयी । जिस दिन उसके पास होने की खबर आयी तो आठ–दस पख्तून सरदार, बूढे–बड़े भोले और सरल लोग नंगी तलवार लेके मेरे पास आये तो मैं डर गया कि ये क्या मामला है । उन्होंने आके तलवार मेरे सामने रख दी और मेरे पैर छुए और कहा कि आपका कोई दुश्मन हो तो बताओ । मेरे दुश्मन का क्या करियेगा ? उन्होंने कहा, हम गरीब पख्तून और क्या सेवा कर सकते हैं, गरदन काट के ला देंगे । आपने बड़ी कृपा, हमारा पहला लड़का स्नातक हो गया । हम बड़े गरीब लोग हैं, हम और क्या कर सकते हैं ? आप देर न करिये, नाम दीजिये । सांझ होने के पहले गरदन काटकर लायेंगे । तो बड़े भोले लोग हैं, एकदम भोले लोग हैं । इतने भोले लोग हैं । वो इतनी सरलता से पैर पकड़ के कहने लगे कि नहीं, नहीं आप कृपा करके नाम दीजिये । एकाध नाम बता दीजिये, सांझ होने के पहले गरदन काटकर लायेंगे । हम गरीब पख्तून और क्या कर सकते हैं ? हम कैसे धन्यवाद दें ? उन्होंने कहा इतनी ही कृपा करना कि कभी मेरी ही गरदन न कटवा देना । तुम जाओ, कोई हमारा ऐसा दुश्मन नहीं जिसकी गरदन कटवायें, लेकिन वे बार–बार कहते रहे । वे करीब आ गये और कहा कि आप हम पर खुश नहीं । आप नाम तो बता दें । नाम ही बताने की जरूरत है बाकी सब हम कर लेंगे, कुछ देर नहीं लगेगी । उनकी आंखों मैं देखता हूं तो बड़े सरल लोग हैं और वो जो कहते थे कि गरदन काट लायेंगे वो बड़ी कठिन बात मालूम पड़ रही है, लेकिन पख्तून में गरदन काटना अशुभ नहीं है, गरदन कटवा देना अशुभ नहीं है । गरदन काटने से भागना या कटवाने से भागना अशुभ है ।

ऐसी कौमें है सारी दुनिया पर कि अगर हम शुभ–अशुभ निर्णय करेंगे तोब हुत हैरानी हो जाये कि क्या शुभ है क्या अशुभ ?अंग्रेज हिन्दुस्तान में आये तब हिमालय के पास आदिवासी के कबीले थे कि उनके घर में मेहमान हो तो सारी सेवा करेंगे और रात अपनी पत्नी भी दे देते, क्योंकि घर मेहमान आया है उसको पत्नी नहीं दीजिये क्या। कैसा अतिथि सत्कार हो रहा है ये ! अपनी पत्नी भी दे देंगे रात। बड़ सीधे लोग हैं। अंग्रेज उनके घर जाकर ठहरने लगे, क्योंकि उनकी सुन्दर पत्नी से वे बहुत आकर्षित होने लगे। पूछने जैसा है कि अशुभ कौन कर रहा है ? वे अशुभ कर रहे थे कि जो कि बहुत भोले थे, जो कहते थे कि जब घर में मेहमान आये तो रात उसको पत्नी की याद आये, इसलिये वो हमारे घर मेहमान हुआ तो हमारी पत्नी मिलनी चाहिये और पत्नी सरलता से रात उसके पास जा के सो जायेगी, क्योंकि घर मेहमान आये हैं—देवता। ये गलत कर रहे थे ? या अशुभ कर रहे थे ? या वो आदमी जो सिर्फ इसलिए घर में आके मेहमान हो गया था कि उसकी औरत पर उसकी नजर थी ? फिर धीरे–धीरे समझ लानी पड़ी, कबीला चालाक हुआ, कनिंग हुआ, फिर उसने कहा कि ये बात गलत है। मेहमान को पत्नी देना गलत है। ये अशुभ है। लेकिन चालाक हुआ तब, चालाकी अशुभ है ? या उसका निर्दोष भाव अशुभ था ? तय करना मुश्किल है।

परिधि पर कुछ भी तय नहीं होता लेकिन कर्मवादी कहता है परिधि पर निर्णय कर लो,ये ठीक और ये गलत। और ठीक एक तरफ करलो,'कंपार्टमेंट' बांध लो। दीवारें बांधो कि ये हम करेंगे और ये हम ना करेंगे। इसलिये कर्मवादी जड़ हो जाता है क्योंकि उसके व्यक्तित्व की जो तरलता है वो खो जाती है। ये ठीक और ये गलत। बस वो ऐसा करेगा लेकिन जिंदगी बहुत तरल है। उसमें सुबह जो ठीक था वो सांझ गलत हो जाता। जो सांझ गलत था, वो सुबह जो ठीक था, वो सांझ गलत हो जाता। जो सांझ गलत था वो सुबह ठीक हो जाता। जो घड़ी भर ठीक था वो घडी भर में गलत हो जाता है। इसलिये सवाल ठीक और गलत करने का नहीं है। सवाल ठीक और गलत को हरेक स्थिति में पहचानने का है। लेकिन वो कौन पहचानेगा ? वो Being पहचानेगा। वो भीतर की आत्मा जाग्रत हो तो पहचान सकती है कि क्या है ठीक और क्या है गलत। ठीक और गलत की कोई निर्णायक स्थिति नहीं है कि हम लेबल लगा दें कि ये ठीक और ये गलत। किसी क्षण

में अहिंसा ठीक हो सकती है, किसी क्षण में गलत हो सकती है। किसी क्षण में हिंसा ठीक हो सकती है। लेकिन, वो जो कर्मवादी है, वो कहते हैं, अहिंसा सदा ठीक और हिंसा सदा गलत।

जिन्दगी इतनी पथरीली नहीं है, जिन्दगी बहुत तरल है। जैसे नदी बहती है, कभी बायें बहती, कभी दायें बहने लगती। कभी इधर जाती, कभी उधर जाती। जिंदगी ऐसी है, रेल की पटरियों की तरह नहीं कि बस चली जाती है। इसलिये जिन्दगी के मामले में जिसने ऐसे सख्त नियम लिये, वो बहुत मुश्किल में पड़ जाते हैं। अगर अहिंसा सदा सही है तो फिर बहुत सी गलत बातें सही हो जायेंगी। अगर अहिंसा सदा सही है तो कोई मुझे गुलाम बनाने आये, आपको गुलाम बनाने आये, तो अहिंसा क्या करेगी? फिर अहिंसा सदा सही है तो गुलामी सही हो जायेगी, लेकिन गुलामी कैसे सही हो सकती है? और गुलाम अहिंसक हो सकता है? जो आत्मा को बेचने को तैयार हो गया वो अहिंसा को कितने दिन तक बचायेगा? अहिंसा भी मिट न जायेगी?

एक छोटी–सी कहानी मुझे याद आती है। एक फकीर है–नसरुद्दीन। उसके गांव के राजा ने तय कर लिया कि हम अपने राज्य से असत्य को उखाड़के फेंक देंगे। उस राजा ने फकीर को बुलाया और कहा कि तुम्हारी सलाह लेना चाहता हूं। मैंने तय किया है कि असत्य को उखाड़ के फेंक दूंगा। फकीर ने कहा पहले पक्का पता लगाओ कि असत्य क्या है? क्योंकि असत्य रोज सत्य बदल लेता है। उसने कहा इसीलिये तो आपको बुलाया कि आप मुझे बता दें कि असत्य क्या है? मैंने तय किया है कि कल से राज्य में एक आदमी को रोज सूली पर लटकाऊंगा, राज्य के चौरस्ते पर। जो झूठ बोलेगा वो सूली पर लटकेगा। बाकी लोग देख लें, समझ जांय कि ये हालत है झूठ बोलने वालों की। उस फकीर ने पूछा किस जगह सूली बनवायी है? राजा ने कहा, गांव का जो बड़ा द्वार है उस पर। तो उस फकीर ने कहा कल मैं उस द्वार पर मिलूंगा और वहीं पर मुलाकात होगी। राजा ने कहा, मतलब क्या है? मैंने तुम्हें पूछने को बुलाया है। फकीर ने कहा–वहीं बता देंगे। सूली तैयार रखी गई। सुबह नगर का दरवाजा खुला तो फकीर ने पहला प्रवेश किया। राजा ने पूछा आप कहां जा रहे हो? उस फकीर ने

कहा सूली पर चढ़ने। राजा ने कहा सरासर झूठ बोल रहे हो। तुम्हें कौन सूली पर चढ़ायेगा ? उस फकीर ने कहा अगर झूठ बोलता हूं तो सूली पर चढ़ा दो—सूली तैयार है। उस राजा ने कहा बड़ी मुश्किल में डाल दिया। अगर मैं तुम्हें सूली पर चढ़ा दूं, तो लोग कहेंगे एक सच बोलने वाले को सूली पर चढ़ा दिया। उसको सूली पर चढ़ा दिया ? लोग कहेंगे कि एक सच बोलने वाले को सूली पर चढ़ा दिया और अगर तुम्हें छोड़ दूं तो तुम सूली पर नहीं चढ़ोगे तो झूठ हो जायेगा। तो उस फकीर ने कहा कि मैं रुका हूं तुम तय कर लो क्या करना है ? अगर तय हो जाय तो सूली पर चढ़ा दो, अगर तय हो जाय तो छोड़ दो। राजा ने कहा, बहुत मुश्किल में डाल दिया। उस फकीर ने कहा, जिंदगी सभी को मुश्किल में डाल देती है—उन सभी को, जो जिंदगी में तय कर लेता है कि बस ये सच है और ये झूठ है।

जिंदगी बहुत तरल है। परिधि पर तय नहीं हो सकता कि क्या ठीक है और क्या गलत है ? और जो आदमी परिधि पर तय करने लगेगा वो नष्ट हो जायेगा। वो ज्यादा से ज्यादा धोखा पैदा कर सकता है—नैतिक होने का, लेकिन कभी धार्मिक नहीं हो सकता। उसे जिंदगी में रोज मौके आयेंगे जो मुश्किल में डालते रहेंगे कि क्या करूँ—क्या न करूं ? फिर धीरे-धीरे वो जिंदगी की तरलता को देखना बन्द कर देंगे। वो अपने ठोस और सख्त ढांचे में, 'पैटर्न' में जीने लगेगा कि बस यही ठीक है। वो आंख बन्द करके वही करता रहेगा और वो आदमी तो गलत ही होगा, क्योंकि भीतर कोई परिवर्तन नहीं हुआ। गलत आदमी पर जब ठीक बात जुड़ जाती है तो ठीक बात भी गलत का सहारा बन जाती है, जैसे कि महावीर को लोगों ने देखा और कहा कि अहिंसा ठीक है, तो महावीर के मानने वालों ने खेती बन्द कर दी। इसलिये जैन खेती नहीं कर रहा। उसने खेती बन्द कर दी, क्योंकि खेती में हिंसा मालूम पड़ी। पौधे काटने पड़ेंगे, पौधों में प्राण हैं। महवीर को एक अनुभव हुआ है कि पौधों में प्राण हैं, महावीर ने जो जाना है, वो फिर जगदीशचन्द्र ने सिद्ध किया विज्ञान से कि पौधों में प्राण हैं, आत्मा है। अब तो महावीर की बात बहुत वैज्ञानिक है। एक आदमी गेहूं की फसल काटेगा, हजारों पौधे काटेगा, तो हजारों प्राण कट जायेंगे—हजारों की हत्याऐं हो जायेंगी। तो जैनों ने खेती बन्द कर दी। लेकिन खेती बन्द करने से क्या होगा ? कोई तो खेती करेगा, गेहूं तो खाना पड़ेगा। मैं खेती न करूं तो आप खेती करेंगे। गेहूं मैं खाऊंगा, हिंसा आपको लगेगी। बहुत मजेदार

नियम हुआ। तो खेती दूसरों पर छोड़ दी, लेकिन वो अहिंसक आदमी भीतर तो हिंसक रहा। ये बड़े मजे की बात है कि किसान कम हिंसक होते हैं, कम इसलिये होते हैं कि 'काटने-पीटने में' 'काटने-पीटने की' बहुत सी वृत्ति तृप्त हो जाती है। एक आदमी वृक्ष काट रहा है, लकड़ी काट रहा है, कुल्हाड़ी चला रहा है, तलवार चला रहा है, तो जिस आदमी ने सुबह तीन घंटे कुल्हाड़ी मारी है—उस आदमी को किसी की गरदन पर कुल्हाड़ी मारने में रस नहीं आयेगा, उसकी तृप्ति हो गई, काटने की, मारने की।

किसान कम हिंसक होता है लेकिन जब किसानी बन्द कर दी—महावीर के मानने वालों ने और लड़ तो नहीं सकता था युद्ध के मैदान में—क्षत्रिय तो नहीं हो सकता था। क्षत्रिय थे मारने वाले। महावीर तो खुद क्षत्रिय थे। तो वो लड़ नहीं सकते थे युद्ध के मैदान में, उन्होंने युद्ध बन्द कर दिया और किसानी भी बन्द कर दी, तो वो बनिये हो गये। लेकिन ध्यान रहे बनिया बहुत हिंसक हो सकता है और हुआ। इसलिये उसने बहुत संपत्ति इकट्ठी करली। **संपत्ति, बिना हिंसा के इकट्ठी नहीं हो सकती लेकिन तब उसने काटना-पीटना बन्द कर दिया। उसने फिर सूक्ष्म तरकीबें काटने-पीटने की निकालीं। एक आदमी की गरदन मत काटो, जेब काटो। जेब काटने से गरदन कट जाती। बल्कि एक दफा गरदन काटना शायद ज्यादा दयापूर्ण हो, जेब काटना ज्यादा हिंसापूर्ण हो जाता है, क्योंकि गरदन कट जाती तो निपट गया मामला। जेब कट जाय तो गरदन भी रहती है। जेब भी कट गई और जिंदा भी रहना पड़ता है और मरे हुए जिंदा रहना पड़ता है।** तो वो जिन लोगों ने गरदन काटने से अपने को परिधि पर रोक लिया, तो फिर उन्होंने काटने की नयी तरकीबें ईजाद की। इसलिए हिन्दुस्तान में महावीर के मानने वालों के पास सबसे ज्यादा पैसा इकट्ठा हुआ—उसका कारण था कि उनकी सारी हिंसा Concentrated हो गयी, उनकी सारी हिंसा सब तरफ से रुक गयी, एक ही दिशा रह गई—पैसा! तो पैसे को उन्होंने पूरी हिंसा कर दी। बहुत थोड़ी संख्या है (महावीर के मानने वालों की) पचीस लाख से ज्यादा नहीं होगी लेकिन सम्पत्ति बहुत ज्यादा है। ये संपत्ति कैसे आयी? अगर भीतर से ये बोध आया होता अगर प्राणों में ये बात लिखी होती तो ये असंभव था कि ये नयी तरह की हिंसा

विकसित होती, लेकिन भीतर से कुछ नहीं आया। ये कोई एक की ही बात नहीं है, सबकी ही बात है--सब तरफ ही ये बात है।

मैंने सुना है जीसस का एक पादरी है। उसने बाइबल में पढ़ा है कि दुश्मन एक गाल पर चांटा मारे तो दूसरा गाल सामने करना। दुश्मन किसके नहीं ? एक दुश्मन ने उसको चांटा मारा और दुश्मन ने चांटा इसलिये मारा कि उसी दिन चर्च में भाषण सुना था कि जीसस कहते हैं कि जो तुम्हारे बांये गाल पर कोई चांटा मारे तो दायां गाल सामने कर दो। वो पादरी चर्च के बाहर निकला तो दुश्मन ने उसके बांये गाल पर जोर से चांटा मारा। भीड़ इकट्ठी थी। पादरी एकदम से गड़बड़ भी नहीं कर सकता था, क्योंकि अभी भीतर कहा था कि दायां गाल सामने कर दो, तो पादरी ने दायां गाल सामने कर दिया। उसने उस पर भी एक चांटा मारा, तब पादरी ने लकड़ी उठाकर उसका सिर फोड़ दिया तो उस आदमी ने कहा, ये तुम क्या कर रहे हो ? पादरी ने कहा कि जीसस ने कहा है कि बायें गाल पर कोई मारे तो दायां सामने करो, लेकिन दांयें पर कोई मारे तो कुछ भी करने को नहीं कहा है। दायें पर कोई मारेगा तो निर्णय हम करेंगे, क्योंकि उसके आगे कुछ लिखा हुआ नहीं है। तुम बांये को मार कर चले गये होते तो बात खतम हो गई होती। तो फिर जीसस भी क्या करते—क्या कर सकते ? उसने कहा। दांया और बांया दो ही तो होते हैं। एक मारा तो दूसरा कर दिया, तीसरा तो है नहीं। अब तीसरा तो आपके पास है। होता ये है, और होने वाला ही ये है। परिधि पर जो निर्णय होते हैं, वो ऐसे ही होते हैं। धर्म से जो नीति और कर्म पैदा हुआ, वो परिधि पर पैदा हुआ लेकिन क्या करें। हमारी तकलीफ ये है कि परिधि हमें दिखायी पड़ती है। क्या करें, क्या न करें ? वही हमारे सवाल हैं। मेरी तो अपनी ये समझ है कि करने की बात की फिकर मत करें, फिकर उसकी करें कि करने वाला कौन है ? वो कौन है भीतर, जो बायें गाल की तरह दांया गाल करता है ? वो कौन है, जो हाथ उठाकर दूसरे गाल पर मारता है ? वो कौन है, जो खेत पर हिंसा करता है? वो कौन है, जो दुकान पर बैठकर गरदन काटता है ? वो कौन है भीतर ? करने वाला कौन है ? कर्म नहीं, करने वाला कौन है ? उसकी तलाश। कर्त्ता कौन है ? उसकी तलाश।

जब मैं उठता हूं तो उठने की फिक्र छोड़ दूं। उठता कौन है ? भोजन करता हूं तो उसकी फिक्र छोड़ दूं कि क्या भोजन करता हूं ? सवाल

है कि भोजन करता कौन है ? जब मैं बोलता हूं तो ये सवाल महत्वपूर्ण नहीं है कि मैं क्या बोल रहा हूं ? सवाल महत्वपूर्ण ये है कि कौन बोल रहा है ? कौन है भीतर ? **प्रत्येक कर्म के भीतर कौन है ? और ध्यान रहे कि कर्म के भीतर जो छिपा है वो बिलकुल अकर्म है । वो कर्ममुक्त है और तभी कर्म के भीतर हो सकता है । बैलगाड़ी पर चाक चलता है, एक कील बीच में खड़ी है, वो नहीं चलती । उसी कील पर चाक चलता है । कर्म का जो चाक है वो अकर्म, आत्मा पर चलता है ।** लेकिन चल नहीं सकता, कर्म के चलने के लिये अकर्म का होना जरूरी है—केन्द्र है, भीतर उस केन्द्र को पकड़ने की कोशिश करें । **चाक नहीं, कील । कर्म नहीं, अकर्म । करना नहीं, होना ।** वो मैं कौन हूं जो उठते वक्त उठता है, चलते वक्त चलता है, खाते वक्त खाता है, बोलते वक्त बोलता है, चुप होते वक्त चुप हो जाता है ? और अगर उसकी थोड़ी–सी भी फिक्र की, आंख बन्द करके, आंख खोलके ऐसे थोड़ा खो जायें तो एक अद्भुत आनन्द आपको उपलब्ध होगा । जब भी आप उठते हैं तो भीतर भी आपके साथ कोई नहीं उठता है । जब आप चलते हैं, तब कोई आपके भीतर है जो चलता नहीं है । जब आप भोजन करते हैं तब कोई आपके भीतर है जो भोजन करता नहीं है । जब आप बोलते हैं तब भी कोई आपके भीतर निरंतर अबोला रहता है । जब आप जीते हैं, तब भी कोई आपके भीतर जीवन के पार खड़ा है । आप मरते हैं, तब भी कोई आपके भीतर नहीं मरता है । आपके सारे कर्मों के भीतर, बिलकुल अकर्म में ठहरा हुआ एक बिंदु है, वही बिंदु Being, वही बिंदु आत्मा है । उस बिंदु की पहचान करनी जरूरी है । कर्मयोग नहीं, अकर्म । वो जो अकर्ता सबके कर्म के बीच में खड़ा है । रास्ते पर चल रहे हों, तो भीतर झांककर पता लगायें कि कोई है भीतर ? जो चल रहा है ? तो बहुत हैरान हो जायेंगे कि बाहर कोई चल रहा है और भीतर कोई भी नहीं चल रहा । भीतर सन्नाटा है । भीतर कभी कोई चला भी नहीं । जन्म से लेकर बूढ़े हो जायें आप, जवान होंगे, बच्चे होंगे, बीमार होंगे, स्वस्थ होंगे, बूढ़े होंगे, जन्मेंगे और भीतर कोई है, जो न जन्मता है, न बूढ़ा होता है, न जवान होता है, न बीमार होता है, न स्वस्थ होता है, न मरता है । वो जो भीतर का बिंदु है, जो सारी लहरों के भीतर शांत सागर है, उसकी पहचान एक क्षण को भी हो जावे, तो जीवन दूसरा हो जाता है फिर दुबारा भूल असंभव है । बिलकुल असंभव है ।

इन चार दिनों में मैंने तीन बातें कहने की कोशिश की। ज्ञान नहीं भीतर वो जो ज्ञान नहीं है, ज्ञाता है। भक्ति नहीं, भाव नहीं, भीतर वो जहां कोई भाव नहीं, सब निर्भाव है। कर्म नहीं, भीतर जहां कोई कर्म नहीं, सब अकर्म। **निर्विचार, निर्भाव, अकर्म अगर ये तीन बातें एक सेकेण्ड में इकट्ठी घट जायं एक साथ, तो एक सेकेण्ड में आपके जीवन में वो बिन्दु आ जायेगा** (Boiling point) **जहाँ पानी भाप हो जाता है।** मनुष्य की जिंदगी में भी वो बिन्दु हैं, जो ये तीन की जोड़ से फलित होता है। मनुष्य वाष्पीभूत हो जाता है, जहां पानी नहीं रह जाता, भाप रह जाती है। जहां हम नहीं रह जाते, परमात्मा रह जाता है। हम तो उड़ जाते हैं, Evaporate हो जाते हैं। हमें तो फिर पाया ही नहीं जायेगा, पाया जाता है वो परमात्मा।

न तो ज्ञान ले जायेगा, न भक्ति ले जायेगी, न कर्म ले जायेगा। ज्ञान, भक्ति, कर्म तीनों मन के ही खेल हैं। इन तीनों के पार जो जायगा वही अमन, No mind, वही आत्मा, वही परमशक्ति, उसको अनुभूति में ले जाती है। तब मुझ से मत पूछो कि मार्ग क्या है ? सब मार्ग मन के हैं। **मार्ग छोड़ें, क्योंकि मन छोड़ना है। कर्म छोड़ें, वो मन की बाहरी परिधि है। तीनों परिधि को एक साथ छोड़ें और उसे जान लें जो तीनों के पार है,** The beyond **वो, जो सदा पीछे खड़ा है, बाहर खड़ा है, उसे जानते ही, वो सब जान लिया जाता है, जो जानने योग्य है। उससे मिलने के बाद कुछ मिलने को शेष नहीं रह जाता। उसे पाने के बाद पाने को कुछ शेष नहीं रह जाता। सब शास्त्र जिसके लिये रोते हैं, चिल्लाते हैं। सब ज्ञानी जिसकी तरफ इशारे उठाते हैं और नहीं उठा पाते। सब शब्द जिसे कहते हैं और नहीं कह पाते। सब आंखें जिसकी तलाश करती हैं और नहीं देख पातीं, सब हाथ जिसको टटोलते हैं और नहीं पकड़ पाते हैं। वो इन तीनों के पार सदा मौजूद हैं। उन तीनों से द्वार खुल जाय तो वो उपलब्ध ही है।**

मार्ग नहीं है, क्योंकि वो दूर नहीं है, क्योंकि वो निकट है, निकटतम है, निकट से निकटतम है। मार्ग नहीं है, क्योंकि वो वहां नहीं है, यहां है। मार्ग नहीं है, क्योंकि वो कल नहीं है अभी है–Here and now, अभी और यहीं है। इसलिये मार्ग में मत भटकें, सब मार्ग भटकाते हैं, सब मार्ग छोड़ दें, खड़े हो जाएं, एक सेकेण्ड को ही सिर्फ। खड़े होने का प्रयास करते रहें। भाव का, विचार का, कर्म का, तीनों के ऊपर उठने का प्रयास करते

रहें, करते रहें, आपके करने से ऐसा नहीं होगा कि आप धीरे-धीरे उठते जायेंगे। ना करते रहें। नहीं उठेंगे, तब तक नहीं उठेंगे, लेकिन करते-करते कभी वो 'टर्निंग-प्वाइंट' आ जायेगा कि तीनों चीजें एक सेकेण्ड को ठहर जायेंगी और आप अचानक पायेंगे कि आप उठ गये। ९९ ° डिग्री तक भी पानी भाप नहीं सिर्फ गर्म होता रहता है, ९८ ° डिग्री पर भी गर्म, ९७ ° डिग्री पर भी गरम, ९० ° डिग्री पर भी गरम, गर्म ही होता रहता है। ठीक १०० ° डिग्री पर पहुंचा, तो सब बदल जाता है। पानी नदारद, पानी गया और भाप हो गई। ठीक ऐसे ही करते रहें। भाव के बाहर, विचार के बाहर, कर्म के बाहर खोजते रहें। अनजान है वो क्षण-कब आ जाये। किसी भी दिन आप पायें कि सौ डिग्री पूरी हो गई और अभी तक कोई थर्मामीटर नहीं है कि बाहर से बताया जा सके कि आपकी सौ डिग्री पूरी हो गई। नहीं, आगे भी आशा नहीं है कि कोई थर्मामीटर हो सके। आपको भी पता नहीं है, मुझे भी पता नहीं है, किसी को भी पता नहीं है कि कब किस आदमी की सौ डिग्री पूरी हो जायगी। किस क्षण में ? और जिस क्षण पूरी हो जायेगी, उसी क्षण आप खो जायेंगे और जो हो जायगा वही सत्य है। वही परमात्मा है। मनुष्य परमात्मा से नहीं मिल पाता। पानी कभी भाप से मिल पाता ? पानी कैसे भाप से मिलेगा ? पानी जब मिटेगा तब भाप होगी, इसलिये पानी कभी भाप से नहीं मिलता। आदमी कभी परमात्मा से नहीं मिल पाता। आदमी जब राख हो जाता, मिट जाता, तब जो रह जाता, वो परमात्मा है। मिटे ताकि पा सके, खो जाये ताकि खोज सके। बीज मिटता है तो वृक्ष हो जाता, बूंद मिटे तो सागर हो जाती है।

मेरी इन बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना उससे अनुग्रहीत हूं और अन्त में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

संकलन : मा योग समाधि,
राजकोट

—oo—

आचार्य रजनीश : एक यथार्थ

सचमुच,
कितना बड़ा आश्चर्य है कि मैं अपनी ही आंखों से देख रहा हूं,
जिसे कभी पढ़ता था और समझ नहीं पाता था.
हां, मैं अपनी ही आंखों से देख रहा हूं
कि धरती पर कुछ हुआ जा रहा है
और जग सारा सो रहा है.
आश्चर्यों का आश्चर्य !
कि 'तू' धरती पर उतर आया है
और वे चांद-तारों पर भाग रहे हैं
और—कम से कम मेरे लिये—
यह एक और भी नया आश्चर्य है कि
देख लिए जाने पर आश्चर्य भी आश्चर्य नहीं रहता.
सचमुच, प्यारे बुद्ध !
अब मुझे आश्चर्य नहीं होता कि जब तुम थे
तुम्हें सुना नहीं गया.
हां, प्यारे कृष्ण !
मुझे कोई आश्चर्य नहीं कि तुम जैसे प्रेमी से लड़ाइयाँ लड़ी गईं
और तुम्हें मारने के षड़यंत्र रचे गये.
मेरे जीसस !
मुझे कोई हैरानी नहीं
कि तुम जैसे प्यारे आदमी आवारा समझे गये
और तुम्हें सूली पर चढ़ाया गया.
और प्यारे सुकरात !
अब मुझे कोई दिक्कत नहीं
कि तुम्हें अपमानित किया गया
और जहर पिलाया गया.....
दरअसल, अजीब है यह सब
कि मेरे लिये अब सभी कुछ आश्चर्य है
और कुछ भी आश्चर्य नहीं है !

—शिव [अब-स्वामी अगेह भारती]

जब जगज्जननी अमृत-स्नात हुईं

—ब्रह्मदत्त

परमात्मा !

आप तो जानते ही हैं कि मैं असमर्थ हूं।

देवताओ !

मैं स्वीकार करता हूं कि मेरी लेखनी पंगु है।

लोगो !

मैं करबद्ध हो क्षमा की याचना करता हूं।

हां, यह दुस्साहस है। सरासर दुस्साहस है। मैं अच्छी तरह जानता हूं कि मैं लिख नहीं सकता। मुझे इस तरह का कोई प्रयत्न भी नहीं करना चाहिए, यह बार-बार मेरे भीतर का लेखक कह रहा है। मुझे उसकी बात मान लेनी चाहिए। आखिर वह मेरा बचपन का साथी है। कुछ सोच-समझकर ही वह मना कर रहा होगा। मुझे यह पराक्रम दिखाकर अपनी हंसी, नहीं, उसकी हंसी नहीं उड़ानी चाहिए। मुझे एक सभ्य सुशिक्षित समझदार आदमी की तरह खामोश रह जाना चाहिए। बल्कि कभी कोई पूछे, जिज्ञासा प्रगट करे, तो उस पर एक रहस्यमयी मुस्कान फेंककर, कन्नी काटकर आगे बढ़ जाना चाहिये। उसमें मेरी.....और उसकी, प्रतिष्ठा की रक्षा की पूरी संभावना है। हां, मैं अच्छी तरह जानता हूं कि मुझे अपने को, अपने लेखक को साफ बना लेना चाहिए।...

...शारदा !

तुम्हारे होठों पर व्यंग की मुस्कान शोभा नहीं देती वीणापाणि !...

मैं जानता हूं कि मैं नहीं लिखूंगा तो मर जाऊंगा। मुझे अपने मरने की इतनी चिंता नहीं है, किंतु मैं यह भी तो जानता हूं कि मैं मर जाऊंगा तो वह अभागा लेखक भी तो मौत के किसी सुनसान बियाबान घाट से जा लगेगा। मुझे उसके प्राणों के लिए कलम उठानी चाहिए, यह बात सही है। परन्तु लिखता हूं तो भी तो उसके बचने की उम्मीद दिखायी नहीं देती। लिखना तो सरासर उसकी आत्महत्या ही साबित होगी, क्योंकि दिन के उजाले को क्या चुटकी से पकड़ा जा सकता है ? सागर में समाती नदी को क्या प्रयोगशाला की मेज पर सजाया जा सकता है ? ब्रह्मांड को क्या 'कोडक' का

कैमरा अपने भीतर कैद कर सकता है ? नहीं न ? तो फिर मैं ही बताओ कैसा चमत्कार दिखाऊं ?.....

...ब्राह्मी !

यूं पाषाणी की तरह न मुस्कराओ।

मैं नहीं समझता कि तुम इतनी भोली हो कि इतना भी न समझो कि ब्रह्मदत्त की अकुशलता ब्राह्मी का ही अपमान है ?

मुस्कराना छोड़ो, आओ।

जड़ न होओ, चलो।

सरस्वती !

भगवती !

मैं तुम्हारा आह्वान करता हूं।

उतरो।...

३० अगस्त १९७१

ओ इतिहास !

गड़े मुर्दे उखाड़ने की चिंता छोड़ो।

वर्तमान तुम्हें पुकार रहा है, आओ।

साक्षी हो जाओ।...

प्रातःकाल साढ़े आठ बजे —

अरी आख्यायिका !

पुराणों के पन्नों में क्या मुंह छिपाये पड़ी हो।

आँखें खोलो, देखो।

भर लो अपने भीतर उस अमृत को।

अमर हो जाओ।...

पाटस्कर हॉल, बम्बई —

भगवान श्री रजनीश एक ऊंचे तख्त पर संन्यासियों से घिरे हुए विराजमान हैं। लगता है सरोवर में छाये रक्त-कमलों के मध्य कोई श्वेत-कमल खिला हुआ है। भगवान श्री अपनी चितरंजन मुद्रा में अवस्थित हैं। दाहिने हाथ ने बांये हाथ को कुहनी से उठा रखा है। बाँये हाथ की तर्जनी और मध्यमा मंथर गति से कपोल पर गिर-गिरकर एक अज्ञात, निःशब्द स्वर्गीय संगीत की सृष्टि कर रही हैं। सागर की अतल गहराइयों का आभास देने वाली उनकी अद्भुत आंखें मुंदी हुई हैं।...

...हंसयाना !

इतनी उतावली न हो। लिख तो रहा हूं !...

स्वामी योग चिन्मय के सामने माइक आ गया है। इसके पहले कि वे बोलें, चौंककर अनंत की ओर देखते हैं। शून्य मौन है। फिर भी बोलना तो अवश्यंभावी है। आहिस्ता से मुंह खुलता है और शब्द लड़खड़ाते हुए बाहर निकलते हैं—

परम ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति न केवल अपने व्यक्तिगत जीवन के चरम-शिखर पर होता है वरन् एक लम्बी राष्ट्रीय, सामाजिक और पारिवारिक शृंखला के विकास की चरम-स्थिति पर होता है। ...धन्य और परम सौभाग्यशाली है वह परिवार-शृंखला, जिसमें ज्ञानी व्यक्ति का अवतरण होता है।... ज्ञानी व्यक्ति के निकट पारिबारिक सदस्य अमृत की खोज में चल पड़ते हैं...उनके निकट उनके आसपास का पूरा समाज, पूरा देश और पूरा विश्व जीवन–अमृत की ओर तीव्र रूप से गतिमान हो जाता है।.. भगवान श्री रजनीश के परिवार के कई सदस्य संन्यास में दीक्षित हो चुके हैं।

...आज का दिन भी परम पवित्र है, क्योंकि भगवान श्री की मां और उनकी चाची संन्यास में दीक्षित हो रही हैं।... यह घड़ी अद्भुत है और याद दिलाती है.. बुद्ध के उस समय की, जब वे परम ज्ञान को उपलब्ध होकर वर्षों बाद अपने शहर से गुजरे।... बुद्ध को उपलब्ध परम जीवन के अमृत की प्यास उनके पारिवारिक सदस्यों एवं मां, पत्नी पुत्र आदि में जगी।... उन्होंने भी इस अमृत यात्रा में जाना चाहा।

...भगवान श्री के आसपास भी लोग अमृत की यात्रा पर चल पड़े हैं, संन्यास के द्वार से।...

अचानक स्वामी योग चिन्मय की आवाज खो गयी।

अनाहत नाद होने लगा।

कानों में वनदेवी की वीणा झंकृत हो उठी।

झांय–झांय–झांय।

मैंने सिर उठाकर देखा। आपाद-मस्तक आग्नेय वस्त्रों में लिपटी एक कोमल काया दर्शकों के मध्य से उठी और धीरे–धीरे मंच की ओर चल पड़ी। पूरे हॉल में सन्नाटा छा गया। वाणी अवाक् हो गयी। सांसें थम गयीं। पलकों ने गिरना छोड़ दिया।

दूर कहीं सागर हहराया।

बाहर वर्षा प्रखर हो गयी।

भीतर सन्नाटा और गहरा उठा।

जगद्धात्री, अन्नपूर्णा, मां जगदम्बा, प्रभु के आसन के समक्ष जा खड़ी हुईं।

.. वागीश्वरी !

ठहरो !

इस तरह मंझधार छोड़कर न जाओ मां।...

तो जगन्मयी, जगन्मोहनी, जगन्माता जगद्गुरु जगदीश्वर के समक्ष जा खड़ी हुईं। सागर में बवण्डर आ गया। हिमालय हिला। भगवान अंशुमाली अपनी कोटि-कोटि रश्मियों को समेटकर गगन से उतर पड़े।... लगा कि कोई नन्हा-सा शिशु तख्त पर से कूदकर नीचे खड़ा हो गया। किसी ने माला बढ़ायी। भगवान ने हाथ बढ़ाकर माला ले ली और दोनों हाथ उठाकर जगद्गौरी के गले में पहना दी।... जगत् की सभी महत्वपूर्ण घटनाएं निपट खामोशी में ही घटित होती हैं, प्रभु भीतर बोले। लगा कि कहीं बीज अंकुरित हुआ। लगा कि कहीं कलियां चिटखीं। लगा कि कहीं कोई जल-स्त्रोत खुला। एकाएक परम-पिता जगज्जननी के चरणों में झुक गये दोनों करों से उन्होंने तीन बार माता के चरण छुए। मां भाव-विभोर हो गयीं। स्वयंमेव उनके दोनों हाथ उठे और पुरुषपुंगव पुत्र के विशाल कंधों पर आशीर्वाद मुद्रा में जा विराजे।

पर्वत के वज्र-हृदय को भेदकर जल की धारा प्रगट हो गयी ! शुष्क मरुस्थल की तप्त रेत से हरी दूब ने सिर उठाया। माताओं की छातियों में दूध छलछला आया। कहीं कोई सिसका। कहीं कोई चिल्ला पड़ा।

तालियों की तुमुल-ध्वनि से पूरा हाल गड़गड़ा उठा।

...मां का पुराना नाम सुश्री सरस्वती देवी...संन्यास का नया नाम हुआ मां अमृत सरस्वती।...

थमी हुई सांसें छूटीं। लगा कि मंदिरों में शंख-ध्वनि गूंज रही हो। उठी हुई पलकें गिरीं। लगा कि सहस्त्रों मृदंगों पर एक साथ थाप पड़ी हो। वाणी सवाक् हुई। लगा कि...

मां शारदा !

क्षमा करें। मैं क्या करूं ? मुझे लगा कि आप चरणों में घुंघरू बांधकर नाच उठीं !

नाचीं न ?

हां ! मैं तो पहले से ही जानता था कि आप नाचेंगी ही ! ... ठहरो ठहरो ! मात्र एक क्षण और ! ...

भगवान फिर उसी तरह अपने आसन पर शोभायमान हो गये हैं। लगता है कि अभी–अभी कोई बड़ी लहर सभी लहरों को लील गयी है। झील शांत हो गयी है। एकदम शांत। पर क्षण भर को ही। फिर हवा बहती है। झील का जल स्फुरित होता है हल्के से और फिर एक विशाल लहर उठती है। ।...पूज्या चाची ठीक उसी तरह से आ खड़ी होती हैं, जैसे मां। भगवान फिर नन्हें शिशु हो जाते हैं। सूरज फिर उतरता है। जल की धारा फिर प्रगट होती है। दूध फिर छलक उठता है।

...चाची का पुराना नाम सुश्री इन्दुप्रभा देवी... संन्यास का नया नाम मां अमृत भगवती।...

तालियों की फिर वही गगनभेदी गड़गड़ाहट होती है हॉल के भीतर और हॉल के बाहर सात दिन से निरंतर बरस रहा मेघ एक क्षण को सहम–कर रुक जाता है और फिर दुगुने उत्साह से अभिषेक के लिए जल इकट्ठा करने में जुट जाता है।...

१२/३४६, बेलासिस ब्रिज
तारदेव, बम्बई–३४

००

"परमात्मा को कहां खोजें ?" मैंने कहा : "प्रेम में। और प्रेम हो तो याद रखना कि वह पाषाण में भी है।"

००

प्रेम जोड़ता है इसलिये प्रेम ही परम ज्ञान है। क्योंकि जो तोड़ता है, वह ज्ञान ही कैसे होगा ? जहां ज्ञाता से ज्ञेय पृथक् है, वहीं अज्ञान है।

———

प्रेम

सत्य-धर्म का प्रेम मार्ग है, कर जन-जन से प्यार !
व्याप्त प्रकृति में मुक्त हास का, प्रेम ही है आधार !!
प्राणी कर जन-जन से प्यार···

जितना चाहे प्रेम ले, प्रेम नहीं कम होगा
प्रेम जगाये प्रेम को पगले, शूल फूल-सा होगा
प्रेम अनेक को एक करे
पहुंचाये प्रभु के द्वार !
कर जन-जन से प्यार !!

मानव से जो प्रेम करे ना, प्रभु से कहां करेगा ?
प्रेम-प्रवाह जो रोकेगा तो, मन में मोह पलेगा
प्रेम बिना स्तुति-प्रार्थना
सब हैं तेरी बेकार !
कर जन-जन से प्यार !!

प्रेम सुपावन सुख-सरसावन, प्रेम की ज्योति अमर है
'परम ज्योति' से ज्योति मिला दे, ऐसी प्रेम-डगर है
प्रेम सुरभि है आत्म-मिलन की
प्रेम की तृप्ति अपार !
कर जन-जन से प्यार !!

प्रेम सृष्टि है, प्रेम दृष्टि है, प्रेम है वह सोपान
जिस पर चढ़कर 'मैं' को खोकर, तोड़ दे सब व्यवधान
परमानन्द अगम्य सत्य से
तब हो एकाकार !
कर जन-जन से प्यार !!

प्रेम असीम तो कर अपना, है प्रभु-प्रियतम चहुं ओर
'अहं' भुलाकर डूब प्रेम में, हो जा आत्म-विभोर
बहे अनन्त प्रेम-सरिता में
जो डूबे मझधार !
कर जन-जन से प्यार !!

(आचार्य श्री के अमृत-वचनों पर आधारित)

— राजेन्द्र 'आकुल', जबलपुर

आबू शिविर या प्रभु लीला

(पिछले शिविर के अलौकिक अनुभव)

—स्वामी आनंद विजय, जबलपुर

मैं तथा मेरी पत्नि (मां प्रेम समाधि) एवं छोटा बच्चा तारीख २-४-७१ को शाम ५ बजे घर के सभी नन्हे-मुन्नों से विदा ले उस आबू शिविर के लिए रवाना हुए, जिसके विचार मात्र से ही अंतर में एक बिशेष आनन्द स्रोत बहने लगा। पूरी यात्रा कर सकुशल उस आबू स्थल पहुंचे, जहां पहुंचते ही स्वामी कृष्ण कबीर, स्वामी कृष्ण मूर्ति के हृदय से हृदय जब मिलें, तो मैंने उनकी उस गहराई को तौलने में अपने आपको भी गहराई में पाया, और धन्यवाद दिया उस प्रभु को, जो इस सब मिलन का साधन था। फिर हम मोटर पर बैठ 'माउंट आबू' की ओर रवाना हुये, रास्ते में ही उस स्थल की झलक आने लगी, जहां प्रभु की लीला होना थी। रास्ते भर कीर्तन करते आनन्द से भरे माउंट आबू पहुंच गये। जहां बस से उतर कर सामान रख ही रहे थे कि अचानक 'वह कृष्ण की साक्षात् मीरा' के दर्शन हो पड़े। फिर क्या था, वह तो ऐसे मिली, जैसे कोई उसका खोया हुआ कृष्ण जन्मों-जन्मों के बाद मिला हो। मैं भाव-विभोर विचार करने लगा कि अगर प्रभु का वास होगा, तो ऐसी ही मां के हृदय में होगा। धन्य है वह सरलता और सहजता, जिसको कैसा भी पात्र पाये, अपने जीवन का सही मार्ग बना आनन्द को उपलब्ध हो जाये।

उसके बाद हम लोग वहां ठहरे, जहां सभी सन्यासी बन्धु ठहरे थे। उन सब से मिलकर ऐसा लगा, जैसे एक ही कुटुम्ब के हम सब लोग हैं और बिछुड़ गये थे, और प्रभु की कृपा से आज मिलाप हो रहा है। जिससे भी शिविर में मिलते, वह ऐसा नहीं मालूम पड़ता कि उससे पहली ही दफा मिल रहे हों, ऐसा जान पड़ता, जैसे हमेशा के परिचित हों। पर ऐसा न था, सब नये लोग थे। फिर शाम उसी स्थल पर ज्यों ही बैठे-बैठे सब लोग कुछ नाश्ता आरंभ करने वाले थे कि मुझे ही नाचने की उमंग आ गई। फिर

क्या था, हम सब तो आनन्द मग्न नाच ही रहे थे उस भारत सेवक समाज के सभी लोग भी साथ में नाचने लगे। फिर तो हमारे आनन्द का पार न था, हम तो पूरी तरह झूम गये और अपने आपको धन्य समझ प्रभु की इस अनुकंपा को धन्यवाद दे उस स्थल की ओर शाम ७ बजे चले। जहां प्रभु की उस लीला का दर्शन होना था, वहां पहुंचते ही मुझे उस गेट पर ड्यूटी दी गई, जहां से सभी शिवरार्थी प्रवेश पा रहे थे। उसी मार्ग से प्रभु का भी आगमन होना था, और हम उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। ८ बजे प्रभु का आगमन हुआ और मुझे देखते ही वे बोले पहुंच गये नेमी। मैंने कहा, हां भैया। कार के पीछे ही हम लोग दौड़ते-दौड़ते मंच तक आ गये और अपने आप को उनके चरणों में अर्पित कर दिया। रात की सभा शुरु हुई। आचार्य श्री के शब्दों को दस-बीस मिनिट ही सुन पाया था कि मेरे कान बहरे होते नजर आने लगे। बहुत कोशिश करता, पर उनकी उस अमृतवाणी के मधुर पान से मैं एकदम आनन्द में डूबा जाता और उनके शब्दों को ठीक से नहीं सुन पाता। उस रात सभी सूचनायें दी गई थीं कि किस प्रकार शिविर में कार्यक्रम होना है।

दि० ५-४-७१ के सुबह की सभा के बाद ध्यान का प्रोग्राम प्रारंभ हुआ, पर मैं शिशु को संभालने में लग गया और शामिल न हो पाया। ध्यान के बाद आचार्य श्री बोले—आप इतनी दूर से आये हो इतनी परेशानी उठाकर, इतना मूल्यवान् समय गवाँ रहे हो। मुझे उनकी यह बात तीर जैसी लगी। ऐसा लगा मुझे, जैसे मुझ से ही कह रहे हैं। फिर क्या था पूरे संकल्प से ध्यान में जुट गया और दो बजे आचार्य जी से मिलने गया। वहां पर पहुंच उनके दर्शन मात्र से ऐसा लगा मानो साक्षात् परमेश्वर विराजमान हों, उनके रोम-रोम से उस 'प्रभु' की सुवास आ रही हो। अपने पुत्र का आचार्य श्री से नामकरण करने को कहा, तो वे बोले, क्या नाम रक्खा है अभी। मैंने कहा—'अंतिम' तो बोले खूब! बहुत अच्छा नाम है। फिर थोड़ी देर रुककर एक चिट में लिखकर बोले, आज से इसका नाम "स्वामी अनादि अनन्त" हुआ। माँ योग क्रांति बोलीं, इसकी उमर भी बतानी पड़ेगी। आचार्य जी बोले, जरूर बताना। उसी समय राजकोट की एक बहन ने आचार्य जी से ध्यान और संन्यास में भय की बात की कि हमें तो डर लगता है—आपके इस प्रयोग से। आचार्य जी बोले, सब डर, सब भय मेरे ऊपर छोड़ दो, मैं सब संभाल लूंगा। और बड़ी सहजता से बोले, ले सकता है कोई इतना

उपद्रव इस जगत् में, जितना मैं करवा रहा हूं। मेरे तो आंसू फूट पड़े और सोचा यह कौन हैं, जो ऐसी बात बोल रहा है ? कोई साधारण हस्ती नहीं है। इनको लोग क्यों नही समझ पा रहे हैं ? और बाद में फिर रोते फिरते हैं, जैसे महावीर, कृष्ण, बुद्ध, राम के लिए रोते फिरते हैं और कहते हैं, हम न हुए उनके वक्त में ! कैसे अभागे लोग हैं, जो इनकी शरण नहीं आते और पत्थर के सामने गिड़गिड़ा रहे हैं। साक्षात् परमेश्वर ने जन्म लिया है, और लोग उसकी आलोचना में लगे हैं। जरूर उनके पास इतना पुण्य नहीं, जो इस विभूति को समझ सकें। धन्य हैं वे लोग, जो इस प्रभु के निकट हैं ! पा लिया उन्होंने, जो पाने जैसा है।

इसी श्रद्धा से भरे हुए 'मौन ध्यान' के लिए हम ध्यान स्थल पर पहुंच गये। वह जगह आम की हरी छाया से आच्छादित थी। जैसे ही आचार्य प्रभु उस वृक्ष की छाया में कुरसी पर बैठे, तब ऐसा लगा कि पत्ती-पत्ती से अमृत बरस रहा हो और उस प्रभु का स्वागत कर रहा हो और चारों ओर साधक लोग अपनी-अपनी मुद्राओं को प्रगट कर रहे थे। था तो वह मौन ध्यान, पर उल्टा था। पूरी भरी हुई भावनायें उसमें प्रगट हो रही थीं। कोई गीत गा रहा था, कोई नाच रहा था, कोई राक्षस का रुप धारण किये था, कोई भांड़ जैसा चिल्ला रहा था, कोई हँस रहा था, कोई लोट रहा था, सब आनन्द में डूबे थे। किसी को किसी से कोई मतलब नहीं, सब अपनी मस्ती की स्थिति में थे। आचार्य श्री इन सब आकृतियों को देख कभी धीरे से मुस्करा देते और आहिस्ते से आंख बन्द कर लेते, तब ऐसा लगता, जैसे भौरों को फूल ने बन्द कर लिया हो और फूल कह रहा है, करलो जितना जी चाहे मेरा पान ! क्या दृश्य था उस वक्त का, जिसने देखा होगा वही जाने, वही जाने इस आनन्द को। इसी प्रकार ६ दिन तक यह 'मौन का ध्यान' चलता रहा। फिर संध्या ध्यान के लिए उसी सुबह वाली जगह में एकत्रित हुए, पर अभी जो छटा उस स्थल की थी, वह एक अनोखी थी। पहाड़ों पर फूले उन पुष्पों ने तो मेरे मन को ही मोह लिया। उस रात्रि में प्रोग्राम के बाद १२ बजे तक मैं, स्वामी अगेह भारती, मां योग कृपा और माँ प्रेम समाधि उन पुष्पों की भीनी-भीनी वास में झूमते रहे। बाकी के दिन उसी स्थान पर गुजारने हेतु, वहां साधना में गहरे जाने के लिए जो टेन्ट बने थे, उसी में आकर रुक गये। क्या आनन्द था उस स्थल पर ! वहीं खाना बनाते और जो भी प्रभु आता उसको खिलाकर अपने को भाग्यशाली

समझते । वहां पर सहज ही सभी लोगों के दर्शन हो जाते और पूरा उन लोगों का भी अनुभव प्राप्त होता, जो ध्यान में गहरे जाते । आनन्द ही आनन्द बरसता । चांदनी के शृंगार व पुष्पों की वास से सराबोर रात अभूतपूर्व लग रही थी ।

दूसरे दिन सूचना मिली कि रात्रि का ध्यान यहां न होकर राजपूताना क्लब में होगा, जो वहां से १।। मील दूर था । वहां हम सब लोग नाचते-गाते आनन्द मग्न हो पहुंचे और जैसे ही आचार्य जी मंच पर आये सभी शिवरार्थी एक स्वर से बोल उठे, "रजनीश आये, आनन्द लाये" पूरा हाल गूंज उठा और लोग खड़े हो नाच उठे । फिर आचार्य जी के प्रवचन के बाद 'त्राटक ध्यान' आरम्भ हुआ । जब ध्यान प्रारम्भ हुआ, तो ऐसा लगा कि कुछ लोग आचार्य जी पर हमला कर देंगे । तो हम लोग उनकी रक्षा में लग गये । हम भी बड़े नासमझ थे, जो उनकी रक्षा में लग गये, जो कि सबकी रक्षा कर रहा है । फिर दूसरे दिन आचार्य जी बोले, मेरी कोई फिकर न करें । आप लोग जिस कार्य को आये हैं उसे पूरा करें । मेरी फिकर छोड़ दें और यहां मेरी स्वास भी निकलनी हो तो निकल जाय और यदि एक भी आदमी ध्यान को उपलब्ध हो जाय, तो मेरा काम पूरा हुआ ।

इस उद्‌बोधन के बाद आचार्य जी बोले, "पूरी शक्ति लगा दें—कुछ भी न बचायें, पागल हो जायें ।" फिर क्या था— लोग पागल ही हो गये । । मैं तो पूरा पागल हो गया और भीड़ से दूर आचार्य जी को निहारता पीछे हट गया । जब मैं पूरी मस्ती में था, तब आचार्य जी मुझे ठीक से नहीं दिख रहे थे तो मैंने मनमें ही कहा, खड़े हो जायें । इतना सोचना था कि प्रभु इस ढंग से खड़े हुए कि अद्भुत छवि थी उस समय उनकी, मनोहारी मुद्रा में प्रभु खड़े हुए, मेरी मनकी कामना ही मानो पूरी हुई । मुझे ऐसा लगा कि अपना हृदय ही चीरकर उनके चरणों में अर्पित कर दूं । मुझे इतनी खुशी थी जिसका कोई पार नहीं । फिर मैंने उनके ऊपर इतने पत्थर फेंके जिसका कोई हिसाब नहीं । यह सब क्यों हो रहा था मुझे पता नहीं । फिर एकाएक उस प्रभु की आकृति काली पड़ी और अदृश्य हो गयी, तो मैं जोर-जोर से चिल्ला रहा था कि रजनीश गायब हो गये, रजनीश गायब हो गये, 'ढूढ़ो-ढूढ़ो' । जब किसी ने मेरी इस आवाज पर ध्यान नहीं दिया, तो मैं खुद ही उस भीड़ को चीरता हुआ उनके निकट पहुंचा । पर वहां भारी भीड़ थी । मैंने दो

लोगों के कन्धों पर हाथ रख दो बार उछलने की कोशिश की पर सफल न हो पाया, पर तीसरी बार उनके चरणों में पहुंच गया, और मुझे पता नहीं कैसे मैं उनके चरणों में पहुंच गया। मुझे तो तब मालूम हुआ जब मैंने उनके चरणों को जोर से पकड़ा और लोग उसे छुड़ाने में लगे पर छुड़ा नहीं पा रहे थे। मैं वहीं चरणों में पड़ा रहा और मेरे भीतर आचार्य जी की एक छोटी-सी प्रतिमा बनी जो इतनी चमक रही थी, जैसे कोई मणी हो, वैसी चमक बाहर कभी नहीं देखी। बाद में प्रतिमा नाचती हुई पूरे शरीर में मिल गई और मैं अपने आप से कहता हूं - "अरे मैं तो रजनीश बन गया"। इसके बाद मुझे पता नहीं कब आचार्य जी चले गये। मैं बहुत गहराई में प्रवेश कर गया।

एक घन्टे के बाद जब इस स्थिति में वापिस लौटा तो जिन लोगों ने यह दृश्य देखा था, कहने लगे, तुम्हारी तो छलांग लग गई, तुम तो आचार्य जी के पास ऐसे गये जैसे नदी में डाइव लगाते हैं बिलकुल सीधे जाकर चरणों में आड़े पड़ गये। मुझे भी आश्चर्य है यह सब कैसे हुआ ? एक दिन दोपहर में ध्यान में इतनी विनम्रता आई कि जो मिलता उसके चरणों में अपना सिर रख देता, उसी से फूट-फूटकर रो लेता। जिसे पाता उसमें ही आचार्य प्रभु के दर्शन होते। फिर उस पूरे ध्यान में ऐसा ही चलता रहा। आँखों पर पट्टी बंधी थी किस-किस से मिला पता नहीं। एक दिन सुबह ध्यान में आचार्य जी ने कहा, जिन्हें कपड़े बाधा दें उतार दें। तब मुझे ऐसा लगा कपड़ा खुद समझ गया है और अपने से अलग हो गया है। मुझे पता नहीं कितनी देर मैं उस नग्न अवस्था में रहा। यह मुझे पहली दफा मालुम पड़ा कि नग्नता के क्या परिणाम हैं। उस समय ऐसा बोध हुआ, जैसे मुझमें मेरा अहंकार शेष नहीं रह गया है। और इस वक्त प्रभु को पूर्णरूप से समर्पण कर पाया, इसी दिन एक विचित्र-सा अनुभव हुआ। जैसे ही मैं आनंद के उस सागर में डूबा था, तभी मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मेरी दोनों आंखों के बीच एक और नेत्र खुल गया है। वह ठीक वैसा था जैसे गोल मणी हो और उसमें उस आचार्य प्रभु की हंसती हुई मूर्ति झलकती हो। यह कुछ क्षण ही बोध हो सका इसके बाद मेरे ऊपर एक चादर डाल दी और उस समय मुझे ठीक से मालुम पड़ा कि मेरा शरीर पूर्णरूप से मुर्दा हो गया है। और मैं अलग खड़ा देख रहा हूं जब मैं ध्यान से वापिस आया तो मेरा शरीर पसीना से लथपथ उस मिट्टी में मिल गया है जहां मैं पड़ा था। बाद में धीरे से उठकर बैठ ही पाया था कि स्वामी आनन्दघन मेरे पास आकर बैठ गये। उनसे मौन में ही जो बातें हुई

वह अनोखी थीं। क्या–क्या उनमें मुझे दिखा प्रभु ही जानें, वह तो मुझे बार–बार चूमते । कभी मेरे बालों में पत्तों का मुकुट लगा कृष्ण का रूप देखते, उनकी उस हंसी और मुस्कान से मैं भी धीरे से मुस्करा देता पर मुझे ऐसा लगता की बस एकदम शान्त ही बैठा रहूं। पर उनके इस प्रेम भरे मिलन को भी स्वीकार करने में आनन्द मिला।

फिर दूसरे दिन के सुबह ध्यान के समय आचार्य प्रभु की वह अमृत–वाणी का १०।१५ मिनट ही रस ले पाया कि मैं भी उस अमृत में डूब गया जिस अमृत में डूबकर आचार्य श्री वह अमृत की वर्षा कर रहे थे। उस दिन मुझे पता है आचार्य जी ने ध्यान के समय कहा था आज सबकी मटकी सीधी हो जाना चाहिए और अमृत से भर जाना चाहिए इसमें पूरे संकल्प से जुट जाँय। मैं तो पहले से ही ध्यान की गहराई में गोता लगा रहा था, फिर क्या था मुझे तो ऐसा लगा कि मेरी मटकी अमृत से इतनी भर गई है, ऊपर से छलक मार रही है। और उसे चीनू भाई संभाल रहे हैं। उस ध्यान के बाद मेरे पास चीनू भाई आकर बैठ गये। क्या क्या मुझे कह डाला। जो मुझे ऐसा लगा कि जिसे कुछ मिल जाता है वह सबको प्रभु जैसा पाता है । ऐसी चीनू भाई की दशा थी, फिर क्या था वहीं मां मीरा पहुंच गई।मां ने तो मुझे गोदी में ले लिया और ऐसी खिलाने लगी और गुदगुदाने लगी और कहने लगी मेरा कन्हैया मिल गया, मेरा कन्हैया मिल गया और पूछी क्या मिल गया तुझे। मुझसे अनायास इशारा से निकल पड़ा हाँ फिर तो वह पूरी मीरा बन नाचने लगी और आनन्द मग्न हो डूब गई फिर उसकी यह हालत देख डाक्टर साहब उन्हें लिवा ले गये।

उसके बाद माँ बीत सन्देह आ पहुंची वह तो बार–बार मेरी आँखों में देख इतनी प्रभावित होती और आनन्द से मुस्करा देती जिसे देखने से मालुम पड़ता कि प्रभु की बड़ी अपार अनुकंपा है। जो इस मां का इतना विशाल हृदय बना दिया, कितनी दिव्य ज्योति थी उसकी आँखों में क्या प्रेम छलकता था। वह बार–बार अंग्रेजी में कुछ कहती पर मैं इन शब्दों के माध्यम से कुछ नहीं समझ पाता पर उसमें जो भाव होते वह शीघ्र समझ लेता कारण मुझे अँग्रेजी नहीं आती। फिर इसी मस्ती को लेकर जब मैं कुए पर स्नान करने जा रहा था, तब मंच के पास ही कुछ लोग ध्यान में लीन नृत्य, गीत गा रहे थे। एक प्रभु प्रेमी तो इतने मस्त थे कि रोते गाते पौधों को गले लगा लेते। इस सब दृश्य को एक घन्टा करीब देखता रहा फिर

स्नान करने जब कुआं पर गया जब कुआं में कूद पड़ा क्या अपार आनन्द आया उस कुये में छलांग लगाने से वर्णन नहीं कर सकता एकदम शीतल जल की जब गहराई में पहुंचा तो ऐसा लगा जैसे प्रभु के जगत में आ गया हूं।

फिर उसी शाम जब त्राटक ध्यान के लिए राजपूताना क्लब पहुंचे तो मेरी उस साधु से भेंट हुई जो पास में ही किसी गुफा में रहते थे। मैं उन्हें बड़े गौर से कुछ देर देखते रहा, उनकी आँखें और मुस्कुराहट ऐसी प्रतीत होती जैसे आचार्य जी ही हों। जब मैं उन्हें इस प्रकार देख रहा था तो वह बोले क्या आप मुझ पर शक्तीपात कर रहे हैं, मुझे पता नहीं शक्तीपात क्या होता है। फिर मैं उन्हें मंच पर ले गया, मिटिंग के बाद आचार्य जी से भेंट कराई और आचार्य जी बोले नेमी इन्हें कल २॥ बजे लेकर मेरे पास आना पर वह विभूति मिलने नहीं आई। इसी आनन्द में डूबते तैरते वह समय आ गया और पता न चला कि आज रात्रि अन्तिम मीटिंग है। उस रात्रि आचार्य जी बोले आज आखिरी ताकत लगा दें। कल तक विदा हो जायेंगे कोई भी चूके न। फिर क्या था पूरी ताकत लगा दी और साथ में वह नया प्रयोग जो आचार्य जी ने आखिरी दिन ही दिया था शुरू किया हू हू हू की आवाज लगाने का। इस प्रयोग से तो मेरे भीतर इतनी तेज अग्नि भड़की कि मैं अपने आप में बेकाबू हो गया और उस प्रभु की ओर बढ़ चला, लोगों के सभी प्रयास विफल हो गये। दस–दस लोग मुझे हटाते पर न जाने कहाँ की ताकत मुझ में आ गई और मैं उस प्रभु के चरणों में अपने आपको समर्पण कर ही माना फिर जैसे ही मैं उनके चरणों में पड़ा था तो मुझे ऐसा लगा जैसे मेरे प्राण बाहर निकल कर उनके चरणों में ही रहना चाहते हों। मैं यह सब देखता रहा फिर क्या था ध्यान समाप्त हुआ पूरी भीड़ आचार्य जी के चरण स्पर्श के लिए दौड़ पड़ी। मेरी तो पूरी मरम्मत हो गई कारण उनके सामने पड़ा था। मेरी तो पूरी थकान मिट गई इसके बाद ध्यान से वापिस आ वैसी ही हालत में नक्की झील रात्रि ११ बजे उस पूर्णिमा की रात उस झील के पास की बगिया में क्या नृत्य किया कुछ पता नहीं। फिर मालूम पड़ा आचार्य प्रभु नौका बिहार के लिए गये हुए हैं। आने पर उनसे गले मिला और उनसे ही मिल गया हूं ऐसा प्रतीत हुआ, उन्होंने मेरी आँखों में आँख डाल गाल पर हाथ रख मुस्कराकर आगे बढ़ गये मैं वहीं ठगा सा रह गया और धन्य रे प्रभु गजब है तेरी लीला कितने भाग्यशाली हैं हम लोग जो सहज ही प्रभु को पा लिया है। लाखों वर्षों की तपस्या का फल होगा जो

आज फलित हो रहा है, और इस प्रभु का प्रसाद मिल रहा है फिर उसी मस्ती में आचार्य जी को बिदा देने आया तो ऐसा लगा कि इतनी गहरी मस्ती में तो घर जाना मुश्किल है। मैंने उनकी कार में आकर कहा प्रभु बहुत ज्यादा पिला दी है मस्ती उतार कर जायें। प्रभु ने कहा ज्यादा उतर जायगी मौज से घर पहुंच जाओगे। फिर वह प्रभु यह सब लीला दिखाकर अदृश्य हो गया। मुझे तो आबू का यह चमत्कार ऐसे लगा जैसे स्वप्न देख रहा हूं। पर मैंने पूरे होश से सब कुछ जाना है। और जो भी इस शिविर में थे सभी को ऐसी अनुभूति हुई होगी, ऐसा जान पड़ता है। फिर हम लोगों को सुबह नौ बजे की मोटर से रवाना होना था, तो मैंने सोचा सब लोगों से कैसे भेंट लूं। मीठी गोली लेकर सबको खिलाकर उनके आशीष ग्रहण कर अपने को बड़ा धन्य समझता। कई मां तो कहती वैसे ही तो इतने मीठे लगते हो और यह मीठी गोली खिलायकर और मधुर हो रहे हो। पर मुझे कुछ भी समझ नहीं आता सिर्फ आनन्द उमंग ऐसी जैसे सच में प्रभु मेरे भीतर विराज गया हो। बड़ा ही अद्भुत आनन्द इस शिविर का क्यों चूक गये वो लोग जो सोचकर रह गये। यह जन्मों जन्मों की तपस्या के बाद का फल है, जो ऐसा मौका आता होगा। मुझे तो पता चलता है कि शायद ही कभी ऐसा प्रभु हुआ होगा जो ऐसा आनन्द वर्षा रहा होगा। और हम हैं, जो इस अमृत को भी नहीं ले सकते। जिन्हें सच में जिन्दगी से प्रेम है, तो पागल हो जाओ इस प्रभु के लिए अर्पण कर दो इसके लिए सब कुछ। यह शायद कई जन्मों में भी न मिले, मत चूको मौका वरना कई जन्मों-जन्मों भटकना पड़ेगा। सब छोड़ दो और आ जाओ इसके निकट, कुछ मत सोचो समझो सब छोड़ दो इसके हाथों में। मैं बार-बार आपसे प्रार्थना करता हूं कि इस महावीर बुद्ध कृष्ण ईसा के अवतार को देखो जो समग्र रूपों का जोड़ है। एक बार इसकी शरण आ जाओ पा जाओगे वह निधि जो जन्मों-जन्मों से नहीं मिल पाई। क्यों भटक रहे हो क्या मरोगे ऐसे ही। भटकते रहोगे पर दया आती है इससे निवेदन करता हूं मत चूको मौका प्रभु तुम्हारे दरवाजे आया है। उसका स्वागत करो और उससे एक हो जाओ।

——

"तुलसी मानस प्रकाशन की उपलब्धियाँ"

हरिकिशनदास अग्रवाल द्वारा लिखित संक्षिप्तरूप में आधुनिक ढंग से आध्यात्मिकता की ओर प्रेरित करने वाली जीवनोपयोगी पुस्तकें

१. **संसार का सार (हिन्दी में) :** ३–००
आधुनिक खेलों, वैज्ञानिक साधनों, जीव-जन्तुओं, वनस्पतियों के द्वारा आध्यात्म शिक्षा।

२. **ज्ञान-साधना :** २–००
लोनावला शिविर में पधारे हुए महापुरुषों के ज्ञान साधना के प्रति संकेत।

३. **विज्ञान से ज्ञान :** १–००
एक्स-रे इत्यादि आधुनिक उदाहरणों को लेकर आध्यात्मिक विद्या नवयुवकों तक पहुंचाने का सफल प्रयास।

४. **वेदान्त-नवनीत :** १–५०
सन् १९६४ के अमृतसर के वेदान्त सम्मेलन में पधारे महात्माओं के प्रवचनों का सार।

५. **वेदान्त का सरल बोध :** २–००
वेदान्त के क्लिष्ट ग्रन्थों के सिद्धांत बड़े ही सरल उदाहरणों में।

६. **आध्यात्मिक पिक्टोरियल (हिन्दी व अंग्रेजी) :** ४–००
ज्ञान की गंभीर बातों को सूत्र तथा चित्र द्वारा प्रस्तुत।

७. **आध्यात्मिक डायरी १९७१** ६–००
सचित्र और दार्शनिक सूत्रों से परिपूर्ण दैनंदिनी।

८. **आध्यात्मिक चित्रावली (हिन्दी-इंग्लिश) पाकेट बुक :** ६–००
२५० पृष्ठों में रंगीन ब्लैक एंड ह्वाइट चित्र इंग्लिश तथा हिन्दी में सूत्रों सहित सर्वसाधारण के लिए आध्यात्मिक ज्ञान।

९. **मुमुक्षु :** ५–००
आधुनिक मनोरंजक आध्यात्मिक उपन्यास।

१०. **मन की शांति (पद्य) :** ४–००
अंग्रेजी मूल रचना 'पीस ऑफ माइंड' का हिन्दी अनुवाद।

११. **हमारी परंपरा :** २–००
क्रिकेट और ताश के पत्ते आदि दृष्टांतों द्वारा अध्यात्म की नवयुवकों तक पहुंच।

१२. आराम सुख शांति और आनन्द : ०–५०

जैसा नाम तैसा गुण ।

१३. अपनी ओर इशारा : १–००

अपनी ओर आने के सूत्र रूप इशारे ।

१४. व्यावहारिक जीवन और परमात्मा : १–००

व्यवहार परमात्ममिलन में बाधक नहीं, इसकी स्पष्टता ।

१५. श्मशान यात्रा : ०–५०

जीवन यात्रा का अंतिम चरण ।

१६. मेरे १०८ गुरु : ३–००

क्षण–क्षण व कण–कण से नूतन ज्ञान ।

१७. सजगता : १–००

पल–पल अविरल वर्तमान में सजग जीवन ।

१८. अविरोध–निरोध और स्वबोध २–००

अविरोध से मन का निरोध और निरुद्ध मनमें स्वबोध ।

१९. वेदान्त का वैज्ञानिक मनन : २–००

वैज्ञानिक दृष्टांतों द्वारा वेदान्त का मनन ।

२०. चिन्ता और निश्चितता : (प्रेस में) २–००

चिन्ता से पार उतरने के सरल सूत्र ।

२१. मन के पार : १–००

विकट सामाजिक धार्मिक और आध्यात्मिक प्रश्नों पर
आचार्य श्री रजनीश के उत्तर ।

२२. घर-घर की समस्या : (प्रेस में) २–००

घरेलू दैनिक विकट समस्याओं का समाधान ।

२३. 'पीस ऑफ माइण्ड' ३–००

अंग्रेजी में सूत्र रूप आध्यात्मिक सरल ज्ञान ।

२४. 'क्वायटर मोमेण्ट्स' २–००

मौन के क्षणों में लिखे सूत्र रूप अंग्रेजी–सूक्त ।

ग्राहक एवं—

(एजेन्टस्, पत्र–व्यवहार करें)

तुलसी–मानस–प्रकाशन

अंतर्गत विभाग केबल मार्केटिंग कंपनी

गुप्ता मिल्स स्टेट, रे रोड, बम्बई–१०

नई ज्योतियां ! दिव्य वाणी ! जीवन संगीत से आलोकित !
नई साज सज्जा में
भगवान श्री रजनीश के विचारों की आध्यात्मिक
त्रैमासिक संकलन पत्रिका
ज्योति शिखा
संपादक—श्री महीपाल मूल्य ५) वार्षिक
(आप भी अपना वार्षिक शुल्क भेजकर इन कृतियों को प्राप्त कीजिये
या आप चाहें तो उपहार में भेंट करें)
संपर्क : जीवन जागृति केन्द्र, रूम नं० ५३, एम्पायर बिल्डिंग,
डा० डी० एन० रोड, बम्बई–१
Phone : 264530

आवश्यक सूचना

गत वर्ष युक्रांद का 'आचार्य रजनीश-जन्म दिवस विशेषांक' प्रेमियों द्वारा कितना पसंद किया गया, इसका अनुभव इसी से हो जाता है कि आज भी प्रेमियों के इस आशय के सुझाव एवं आग्रह आते रहते हैं कि उस तरह के विशेषांक कभी–कभी निकालते ही रहें। इस वर्ष तो हम कोई विशेषांक नहीं निकाल पाये, परन्तु आचार्य श्री के जन्म-दिवस पर पुनः विशेषांक निकले, ऐसा ख्याल है। अतः प्रेमियों का सहयोग निवेदित एवं अपेक्षित है। प्रेमी आचार्य श्री से संबंधित संस्मरण व भाव आदि लिख भेजें। आचार्य श्री द्वारा लिखे गये पत्र भी भेजे जा सकते हैं। आचार्य श्री के किन्हीं विचारों की स्वस्थ आलोचना भी प्रकाशित की जा सकेगी।

विशेषांक का संपादन पुनः आचार्य–प्रेमियों में सुपरिचित स्वामी अगेह भारती करेंगे, अतः विशेषांक हेतु रचनाएं सीधे उन्हीं के पते पर भेजें। उनका पता इस प्रकार है—

स्वामी अगेह भारती
जेड. २१७ 'सी' अपर लाइन्स जबलपुर (म. प्र.)

नोट–कृपया अपनी रचना-सामग्री साफ अक्षरों में, पृष्ठ के एक ओर, डबल स्पेस, में और बड़ा हाशिया देकर ही भेजें, ताकि प्रकाशन में असुविधा न हो।

(साहित्य सूची कवर पृष्ठ २ के आगे)

गीता दर्शन ५-००

प्रेम है द्वार प्रभु का

संभावनाओं की आहट ६-००

साहित्य प्राप्ति स्थल

(१) जीवन जागृति केन्द्र, रूम नं. ५३, एम्पायर बिल्डिंग, डा. डी. एन. रोड, बम्बई : १ फोन : २६४५३०

(२) मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली–७

(३) स्वदेशी वस्तु भंडार, जामनगर

(४) आर. अंबानी एंड कंपनी., अपोजिट : जिमखाना, राजकोट

(५) चंद्रकांत पटैल, आसोपालव, बैंक आफ इंडिया के सामने, रावपुरा बड़ौदा

(६) मोतीलाल बनारसीदास, नेपाली खपरा, वाराणसी

(७) मोतीलाल बनारसीदास, अशोक राजपथ, पटना

(८) भारतीय संस्कृति भवन, माई हीरांगेट, जालंधर

(९) सस्तु किताब घर, पथ्थर कुवां, रिलीफ रोड, अहमदाबाद

(१०) बालगोविद कुबेरदास, गांधी रोड, अहमदाबाद

(११) सर्वोदय साहित्य भंडार, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर–२

(१२) हीराभाई मेहता, पांचघर, ७०, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता : १

(१३) सुषमा साहित्य मंदिर, जवाहरगंज, जबलपुर

(१४) श्री आर. के. पुंगलिया, १०१, टिम्बर मार्केट, पूना-२

(१५) स्वामी आनन्द वेदांत, जीवन जागृति केन्द्र, वंटाघर, नीमच (म. प्र.)

(१६) श्री हीरालाल कोठारी, दांता भैरू, कुम्हारवाड़ा, उदयपुर (राज.)

"जिसे प्रभु को पाना है उसे प्रतिक्षण
उठते-बैठते भी स्मरण रखना चाहिये
कि वह जो कर रहा है, वह
कहीं प्रभु को पाने के मार्ग में
बाधा तो नहीं बन
जायेगा ?"

—आचार्य श्री रजनीश

परमात्म मिलन की निरंतर प्यास में
खोये साधकों को हमारे शत् शत् वंदन

स्वामी गोविंद सिद्धार्थ
(श्री जे. डी. लश्करी),
ए टु जेड इन्डस्ट्रियल एरीया,
लोअर परेल, बंबई : १३
फोन–370692